बाल विज्ञान पत्रिका जनवरी 2014

चकमक

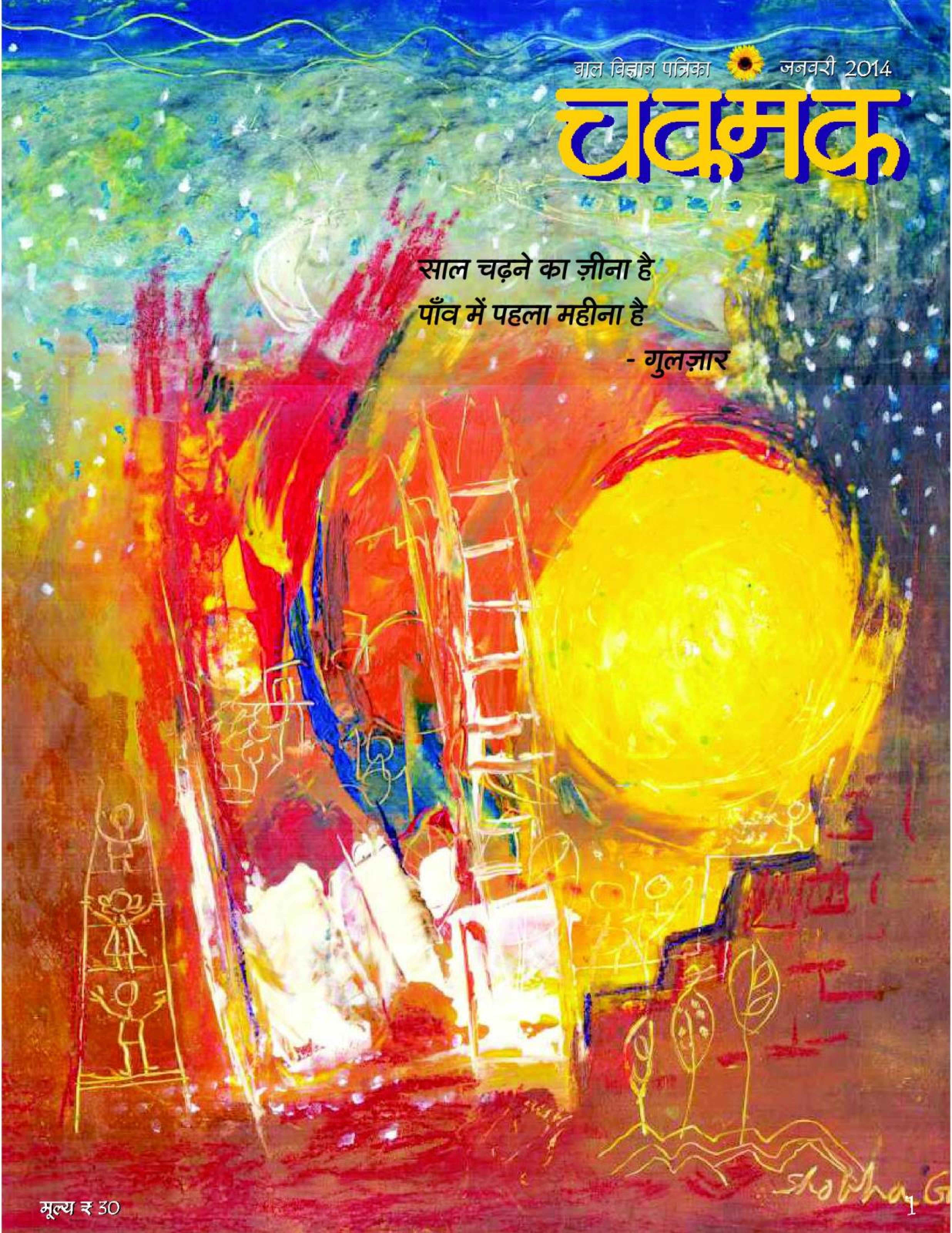

साल चढ़ने का ज़ीना है
पाँव में पहला महीना है

- गुलज़ार

मूल्य ₹ 30

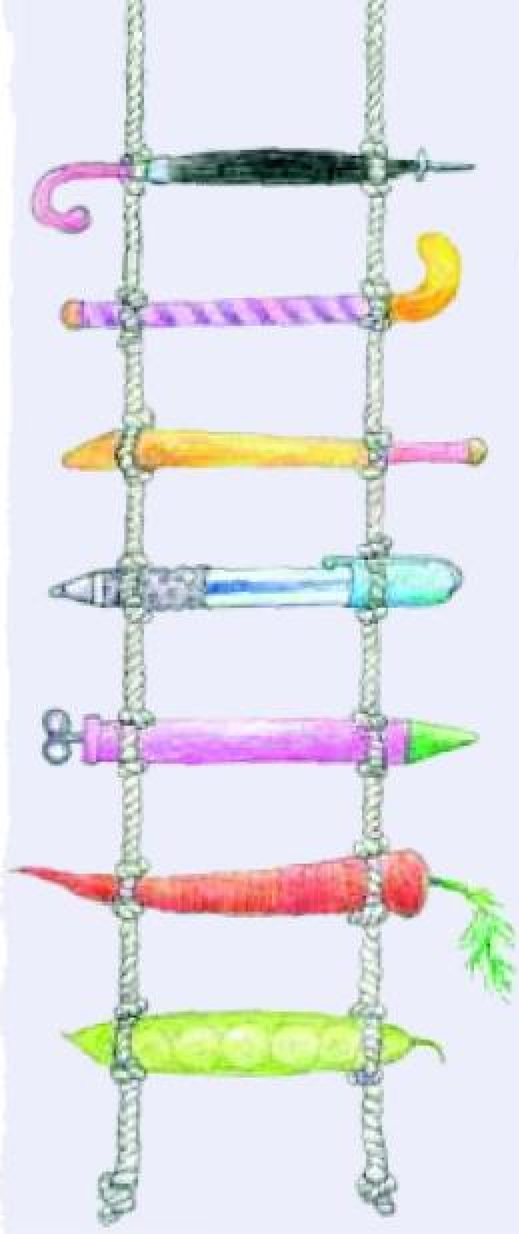

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 328 जनवरी 2014

4 बोली रंगोली

6 आसमान का चूल्हा, चाँद की रोटी

7 गुगली

8 अपनी चुम्बकीय सुई बनाओ

10 नाम में क्या रक्खा है!

12 गाना आए या न आए गाना चाहिए

13 मुठभेड़

16 रात

17 मेरा पन्ना

20 चित्रों की भाषा

22 चिम्मनलाल के पायजामे

24 किस मिट्टी में पनपतीं हैं खुशियाँ

26 चित्रकथा - वरना...

30 मोर

33 जुड़वाँ

34 महाकुम्भ का महावृत्तान्त

36 हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

39 एक अद्भुत फिल्म - ग्रैविटी

43 चित्रपहेली

44 कहानी का परिवार

प्रिय दोस्तो,

नया साल मुबारक हो। बीते दिसम्बर में तुम्हारे दो प्रिय धारावाहिक पूरे हुए – एक बिक्सू और दूसरा विनोद कुमार शुक्ल की लम्बी कहानी – मुझे कुछ करना है...। तुम्हें बोलू याद है न?... वही जो बोलता था तो चलता था या चलता था तो बोलता था। मुमकिन है इस साल दुबारा तुम्हें बोलू से मिलने का मौका मिल जाए!

फिलहाल इसी अंक से तीन नए कॉलम शुरू कर रहे हैं। अपने प्रिय कवि गुलज़ार से तुम्हारी जुगलबन्दी का एक कॉलम "बोली रंगोली"। इसमें हर माह गुलज़ार साब एक छोटी-सी कविता लिखेंगे और उसे तुम चित्रों में ढालोगे। दूसरा कॉलम है – शेज़ारी। इसमें तुम्हें मराठी का साहित्य पढ़ने का मौका मिलेगा। इसी अंक से जाने-माने कार्टूनिस्ट राजेन्द्र धोड़पकर एक कार्टून कोना – गुगली – शुरू कर रहे हैं।

अंक दर अंक सामग्री में विविधता का यह सिलसिला बना रहेगा, इस वादे के साथ...

चकमक

10

वैज्ञानिक की इच्छा थी कि इस पक्षी को उनकी दिवंगत पत्नी के नाम से याद किया जाए।

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

आवरण चित्र
शोभा घारे

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

इस अंक में

7
गुगली
शुरू कर रहे हैं।

30
एक पल के लिए
वह मोर पीछे हटा और
दूसरे ही क्षण वह मुझ पर
झपट पड़ा।

22
बाबूजी के साथ
साइकिल पर बैठकर
हर दूसरे-तीसरे दिन
मेरा इस बाज़ार में आना होता।

8
चलो, चुम्बक का एक और गुण जानें...

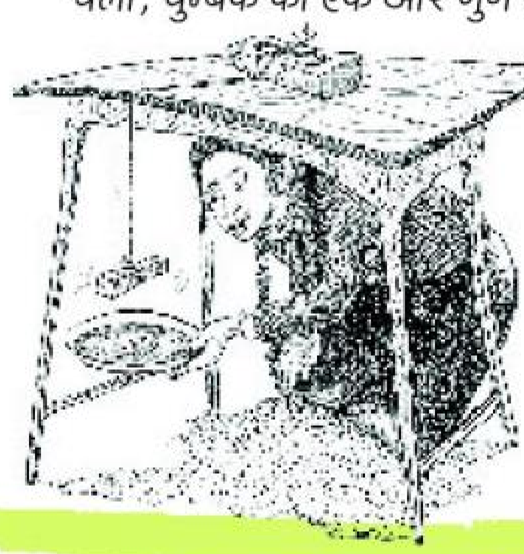

6
दोनों पहलवान
बुढ़िया के हथेली
पर कुश्ती
करने लगे।

वितरण
कायनात ज़र्रीन

सहयोग
मिताली अहीर
वरुण ग्रोवर
मिहिर
प्रभात
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रतिः	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिकः	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन सालः	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवनः	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वितीय सहयोग से विकसित

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016
फोनः (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्सः (0755) 2551108
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

बोली रंगोली

साल चढ़ने का ज़ीना है
पाँव में पहला महीना है

गुलज़ार

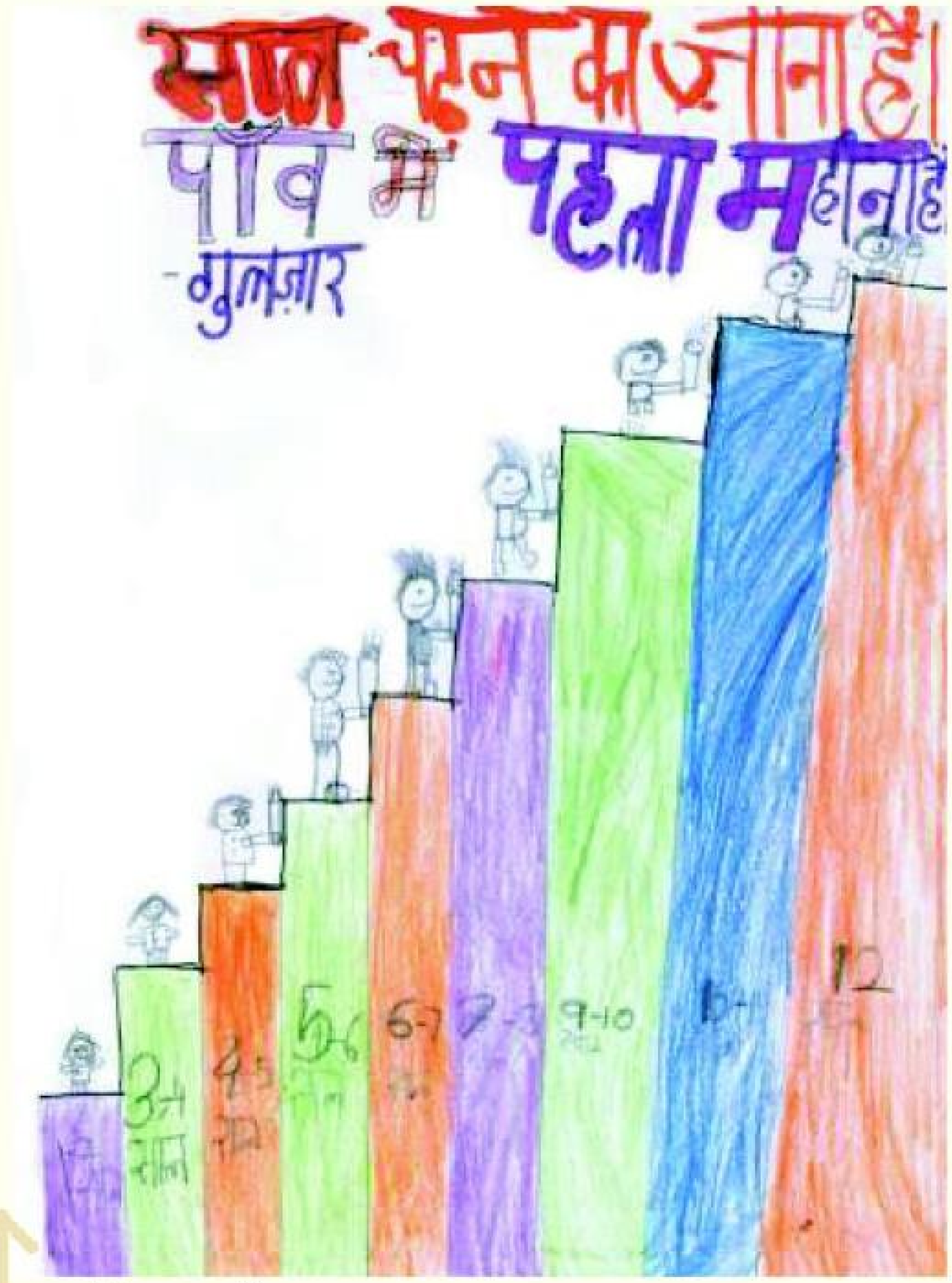

यश सिन्हा, छठी

दोस्तो,

शुक्रिया

इस कॉलम के लिए तुम्हारे साढ़े चार सौ चित्र मिले। सब एक से बढ़कर एक। गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र यहाँ पेश हैं। इन पाँच चित्रकारों को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। तीस चित्र और भी हैं जो हमें पसन्द आए। इन्हें तुम पेज 29 पर देख सकते हो।

फरवरी के लिए कविता हैः

चाहे तो आसमान पलट सकती है हवा
पन्ना पलट सकेगी क्या मेरी किताब का?

इस कविता को पढ़कर तुम्हें जो भी सूझता है उसका एक चित्र बुनना है। हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 13 जनवरी तक मिल जाए। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। हमारा पता हैः चकमक, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल - 462016, फोन - 094250 10115

ई मेलः **chakmak@eklavya.in**

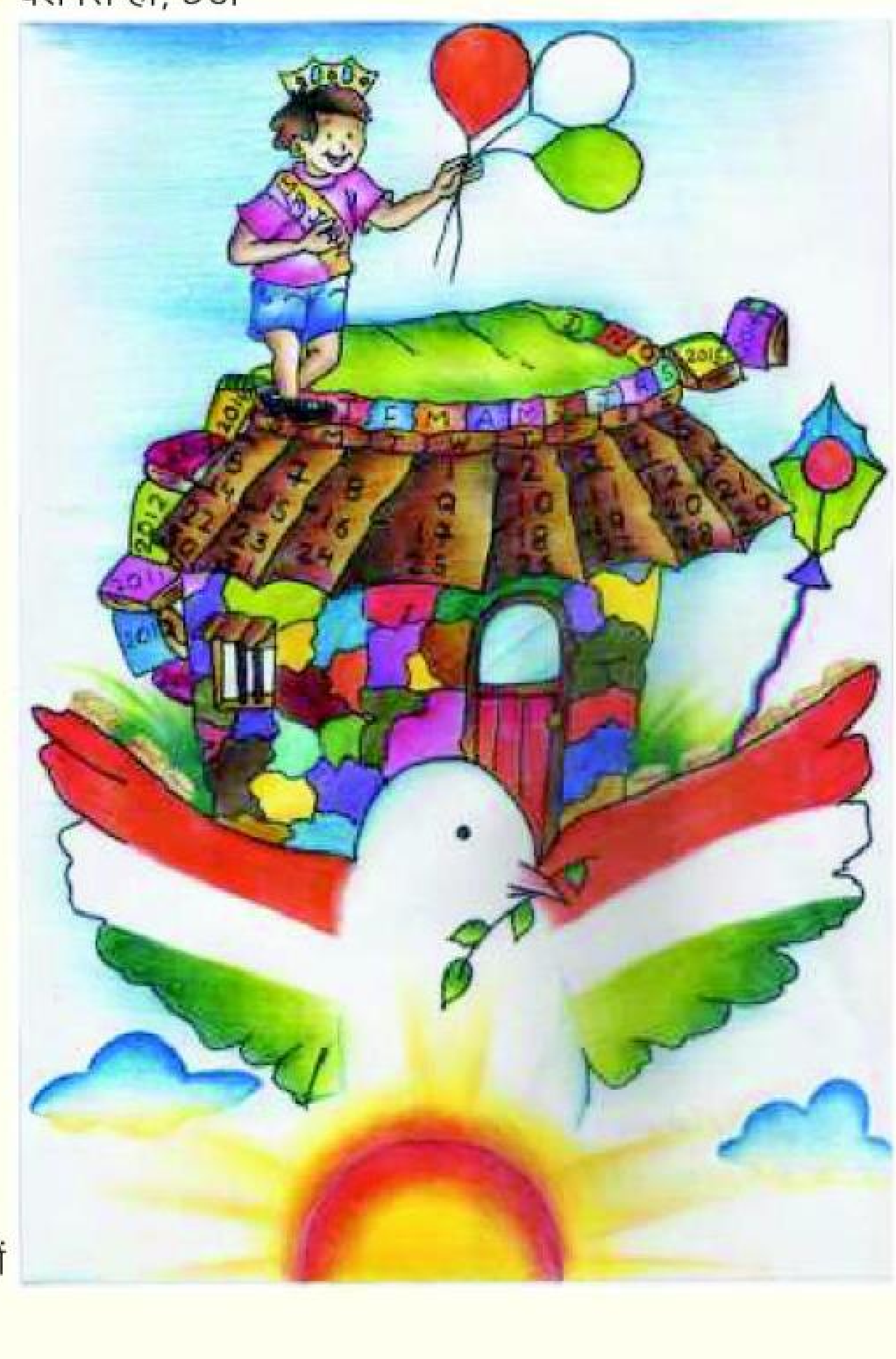

अमीषा मोहन, आठवीं

पूर्वी सक्सेना, सातवीं

दिव्या अग्रवाल, सातवीं

रायना विन, आठवीं

बज्जिका लोककथा

आसमान का चूल्हा, चाँद की रोटी

दो पहलवान थे। एक का नाम सत्तू पहलवान और एक का नाम लकड़ पहलवान था। लकड़ पहलवान सालभर जलावन काटता और एक दिन बोझा बाँधकर लाता था। सत्तू पहलवान एक पोखरी में एक मुट्ठी सत्तू छिटक देता और एक बार में पी जाता था। एक दिन की बात है, सत्तू पहलवान ने पोखरी में एक मुट्ठी सत्तू छिटक दिया और पोखरी का सारा पानी पी गया। पानी पीने के बाद उसे नींद आ गई और वह वहीं सो गया। जंगल से एक हाथी पानी पीने के लिए पोखरी पर आया तो उसे पानी नहीं मिला। हाथी ने जब सत्तू पहलवान को सोया हुआ देखा तो सोचा कि लगता है यही सारा पानी पी गया है। आज मैं इसको मज़ा चखाता हूँ। हाथी अपने पैर से उसके पूरे शरीर को रौंदने लगा। और सत्तू पहलवान के शरीर पर कूदने लगा। सत्तू पहलवान की नींद खुल गई। बोला, "कौन है भाई? क्यों गुदगुदी कर रहा है?" उसी समय लकड़ पहलवान उधर से अपना जलावन का बोझा उठाए आ रहा था। सालभर में काटे गए जलावन का बोझा किसी पहाड़ की तरह विशाल और भारी दिखाई दे रहा था। लकड़ पहलवान को भी प्यास लगी थी। लेकिन पोखरी में पानी ही नहीं था। उसकी नज़र सत्तू पहलवान पर पड़ी। दोनों में राम-सलाम हुई।

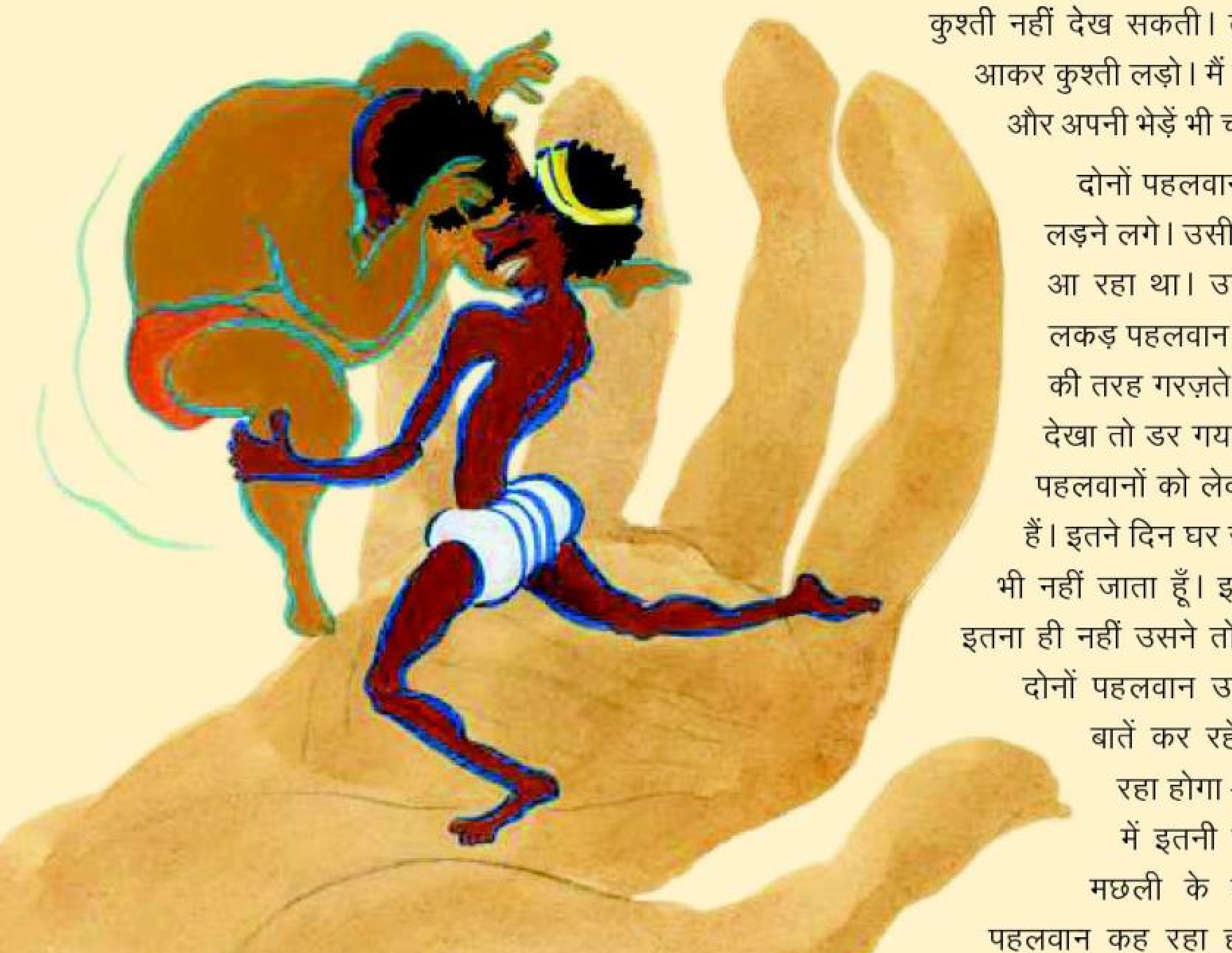

लकड़ पहलवान ने सत्तू पहलवान से कहा, "देखो भाई, मैं भी पहलवान हूँ। यह बोझा देख रहे हो, इसे सालभर से काट रहा था। आज लेकर आ रहा हूँ। सुना है आप भी पहलवान हैं। तो क्यों नहीं आज हम दोनों कुश्ती लड़ें। हार-जीत से फैसला हो जाएगा कि हम दोनों में से बड़ा पहलवान कौन है।" सत्तू तैयार हो गया। पर बोला कि हमारी कुश्ती को देखेगा कौन? देखनेवाला भी चाहिए। दोनों ने अपनी नज़रें चारों तरफ घुमाईं। तभी एक बुढ़िया अपनी नौ सौ भेड़ों को चराते हुए आती दिखी। दोनों पहलवानों ने उस बुढ़िया से ही कुश्ती देखने का निवेदन किया। बुढ़िया तैयार तो हो गई, लेकिन एक शर्त रखी। बोली कि मुझे भेड़ चरानी है सो मैं एक जगह रुककर कुश्ती नहीं देख सकती। तुम ऐसा करो मेरी हथेली पर आकर कुश्ती लड़ो। मैं तुम्हारी कुश्ती भी देखती रहूँगी और अपनी भेड़ें भी चराती रहूँगी।

दोनों पहलवान बुढ़िया की हथेली पर कुश्ती लड़ने लगे। उसी समय उधर से बुढ़िया का बेटा आ रहा था। उसने अपनी माँ की हथेली पर लकड़ पहलवान और सत्तू पहलवान को बादलों की तरह गरज़ते और टकराते हुए कुश्ती लड़ते देखा तो डर गया। उसने सोचा आज तो माँ दो पहलवानों को लेकर मुझे पीटने के लिए आ रही हैं। इतने दिन घर से गायब रहा हूँ और भेड़ चराने भी नहीं जाता हूँ। इसीलिए माँ गुस्सा हो रही हैं। इतना ही नहीं उसने तो यहाँ तक भी सोच लिया कि दोनों पहलवान उसके बारे में जाने कैसी-कैसी बातें कर रहे होंगे। लकड़ पहलवान कह रहा होगा – मैं बुढ़िया के बेटे को समन्दर में इतनी दूर फेंक दूँगा कि सीधा व्हेल मछली के मुँह में जाकर गिरेगा। सत्तू पहलवान कह रहा होगा – मैं बुढ़िया के बेटे को

चित्रः तापोशी घोषाल

आकाश में इतना ऊँचा फेंक दूँगा कि उसकी तारों से भेंट हो जाएगी। "लेकिन मैं इनकी पकड़ में नहीं आनेवाला।" उसने सोचा। और बुढ़िया की नौ सौ भेड़ों को अपने कम्बल में लपेटा, कँधे पर लटकाया और तूफान की तरह दौड़ चला।

भागते-भागते वह एक गाँव में पहुँचा। उस गाँव में एक सात मंज़िल का घर था। उसमें रानी बलकेसरी सबसे ऊपरी मंज़िल पर बैठी धूप में अपने केश सुखा रही थी। तूफान के वेग से उड़ते जा रहे बुढ़िया के लड़के को यह तो दिखा नहीं कि सामने रानी की आँख है कि क्या है। वह कँधे पर लटकी नौ सौ भेड़ों समेत रानी की आँख में जा गिरा। रानी ने अपनी सबसे छोटी उँगली से, जो कि ताड़ के पेड़ के बराबर थी, लड़के और भेड़ों को आँख से तिनके की तरह निकालकर फेंक दिया। लड़का कँधे पर रखी नौ सौ भेड़ों समेत बुढ़िया के सामने जाकर गिरा। बुढ़िया की हथेली पर दोनों पहलवान अभी भी कुश्ती लड़ रहे थे। बुढ़िया ने लड़के को देखा तो बोली, "आ गया तू। कुश्ती देखना चाहता है तो इस हथेली पर बैठ जा।" लड़का चुपचाप कँधे पर लटकी नौ सौ भेड़ों सहित बुढ़िया की दूसरी हथेली पर बैठ गया। और टुकुर-टुकुर कुश्ती देखने लगा। शाम होने लगी थी। बुढ़िया एक हथेली पर लड़ते हुए पहलवानों को और दूसरी हथेली पर नौ सौ भेड़ें कँधे पर लटकाए लड़के को लेकर घर की तरफ चल दी। बुढ़िया घर तो आ गई लेकिन खाना कैसे बनाए। उसने घर के आँगन में खड़े-खड़े आसमान में फूँक मारी। आसमान के तवे पर तारे हँसने लगे और चाँद की रोटी तैयार होने लगी।

उधर बलकेसरी रानी को रोटी की खुशबू आ गई। वह अपने मकान की सातवीं मंज़िल पर आई। अपनी ताड़ जैसी उँगलियोंवाले हाथ को लम्बा कर चाँद की रोटी की तरफ हाथ बढ़ाने लगी। बुढ़िया बोली, "रुक बलकेसरी रुक! मेरे दोनों हाथ रुके हुए हैं। पहली रोटी मुझे खिला फिर तू खा।" बलकेसरी रानी ने ऐसा ही किया। अपने मकान की सातवीं मंज़िल पर खड़े-खड़े ही आसमान से रोटी का कौर तोड़कर बुढ़िया को दिया। बुढ़िया बोली, "तू भी साथ के साथ खाती जा।"

बलकेसरी रानी और बुढ़िया को रोटी खाते देखकर पहलवानों के पेट में शेर-चीते कूदने लगे और बुढ़िया के लड़के के पेट में हाथी-घोड़े दौड़ने लगे।

स्रोतः बुधन पासवान, पूसा

संकलनः रूपम कुमारी, पुनर्लेखनः प्रभात

अपनी चुम्बकीय सुई बनाओ

उमेश चौहान

चकमक के पिछले अंक में तुमने ऑलपिन से चुम्बकीय सुई बनाई थी। इस बार एक और तरीके से चुम्बकीय सुई बनाते हैं।

सामग्रीः ऑलपिन, एक छड़ चुम्बक, प्लास्टिक की प्लेट, पानी, माचिस की तीली, ब्लेड।

विधिः ऑलपिन के बराबर माचिस की तीली का एक टुकड़ा काटो। एक ऑलपिन को ज़मीन पर रखकर अँगूठे के नाखून से उसकी घुण्डी को दबाकर रखो। अब एक छड़ चुम्बक के उत्तरी ध्रुव को ऑलपिन की घुण्डी की ओर रखो। चुम्बक को ऑलपिन पर रगड़ते हुए उसकी नोक तक ले जाओ और उठा लो। ऐसा 15-20 बार करो। पिछली बार की तरह इस ऑलपिन को माचिस की तीली के बीच में समकोण पर आर-पार चुभा दो। एक प्लेट में पानी लेकर तीली लगी ऑलपिन को उसमें तैरा दो। तुम देखोगे कि यह ऑलपिन चुम्बक बन गई है और चुम्बकीय सुई की तरह उत्तर-दक्षिण दिशा बता रही है। ऑलपिन की घुण्डी वाला सिरा किस दिशा में है – उत्तर या दक्षिण? घुण्डी की ओर कौन-सा ध्रुव बना तथा नोक की ओर कौन-सा ध्रुव बना? एक दूसरी ऑलपिन लो और इस बार उसकी घुण्डी के पास चुम्बक का दक्षिण ध्रुव रखो। पहले की ही तरह चुम्बक को ऑलपिन के सिरे तक रगड़कर पानी में तैराओ। इस बार ऑलपिन की घुण्डी किस दिशा में है? उत्तर या दक्षिण?

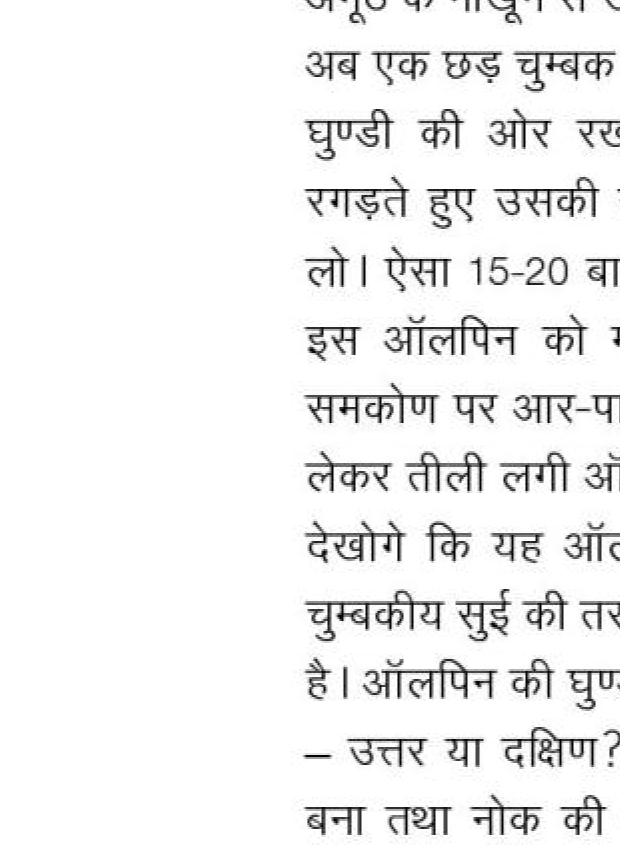

चुम्बक में आकर्षण और विकर्षण

सामग्रीः छड़ चुम्बक, ऑलपिन से बनी चुम्बकीय सुई, प्लेट, पानी

विधिः तुम्हारे छड़ चुम्बक के सिरों पर **N** और **S** लिखा होगा। अगर नहीं लिखा है तो चुम्बक के बीच में पतला धागा बाँधकर उसे लटका दो। स्थिर होने पर चुम्बक का जो सिरा उत्तर दिशा में है वह चुम्बक का उत्तर ध्रुव (**N**) तथा दक्षिण दिशा वाला दक्षिण ध्रुव (**S**) कहलाएगा। चुम्बक पर **N** और **S** लिख लो। प्लास्टिक की प्लेट में पानी भरकर चुम्बकीय सुई को उसमें तैराओ। चुम्बकीय सुई के पास चुम्बक का उत्तर ध्रुव ले जाओ। यदि चुम्बकीय सुई का वह सिरा उत्तर ध्रुव है तब इन दोनों में विकर्षण होगा। चुम्बक का दक्षिण ध्रुव सुई के इस सिरे के पास ले जाने पर इनमें आकर्षण होगा। क्या तुम बता सकते हो कि जब दोनों उत्तर ध्रुव या दोनों दक्षिण ध्रुव यानी समान ध्रुव पास आते हैं तो क्या होता है? और यदि असमान ध्रुवों को पास लाए तो क्या होगा?

चित्रः प्रशान्त सोनी

लोहे का बुरादा इकट्ठा करना

सामग्रीः चुम्बक, कागज़, सड़क की धूल/रेत, प्लेट

विधिः एक चुम्बक को किसी कागज़ में लपेट लो। अब इस कागज़ लिपटे चुम्बक को सड़क किनारे की धूल में या रेत के ढेर में बार-बार छुआकर ऊपर उठा लो। तुम कागज़ पर ढेर सारे कण चिपके पाओगे। इन कणों को झड़ाकर प्लेट में इकट्ठा करके रख लो। इस तरह लगभग दो चम्मच कण इकट्ठा कर लो। इन्हें हम लोहे के बुरादे के स्थान पर उपयोग करेंगे।

चुम्बक का आकर्षण बल

सामग्रीः छड़ चुम्बक, रेत कण/सड़क की धूल, प्लेट

विधिः चुम्बक का आकर्षण बल सब जगह समान होता है या नहीं इसे जाँचने के लिए एक प्रयोग करते हैं। रेत से इकट्ठा किए लोहे के बारीक कणों को एक प्लेट में रख दो। इस पर छड़ चुम्बक की हर सतह को स्पर्श कराओ। तुम देखोगे कि लोहे के कण चुम्बक के बीच की बजाय उसके सिरों पर ज़्यादा चिपकते हैं। यानी सिरों पर चुम्बकीय बल अधिक होता है। इन सिरों को ही चुम्बक के ध्रुव कहते हैं।

चुम्बकीय बल रेखाएँ बनाओ

सामग्रीः एक पुष्ठा/तख्ती, छड़ चुम्बक, रेत

विधिः तुमने देखा कि चुम्बकीय बल चुम्बक के सिरों पर अधिक होता है लेकिन चुम्बकीय बल का क्षेत्र कितना है इसे जाँचने के लिए एक प्रयोग करते हैं।

एक छड़ चुम्बक को ज़मीन पर उत्तर-दक्षिण दिशा में रखो। अब इस पर एक पुष्ठा या तख्ती इस तरह रखो कि चुम्बक तख्ती के ठीक बीच में रहे। लोहे के बुरादे को तख्ती पर रंगोली की तरह थोड़ा-थोड़ा डालो। तख्ती के एक सिरे को हाथ से पकड़कर दूसरे हाथ से तख्ती के किनारे को धीरे-धीरे ठोको। तुम्हें तख्ती पर एक आकृति उभरती दिखेगी। यही चुम्बक की बल रेखाएँ हैं।

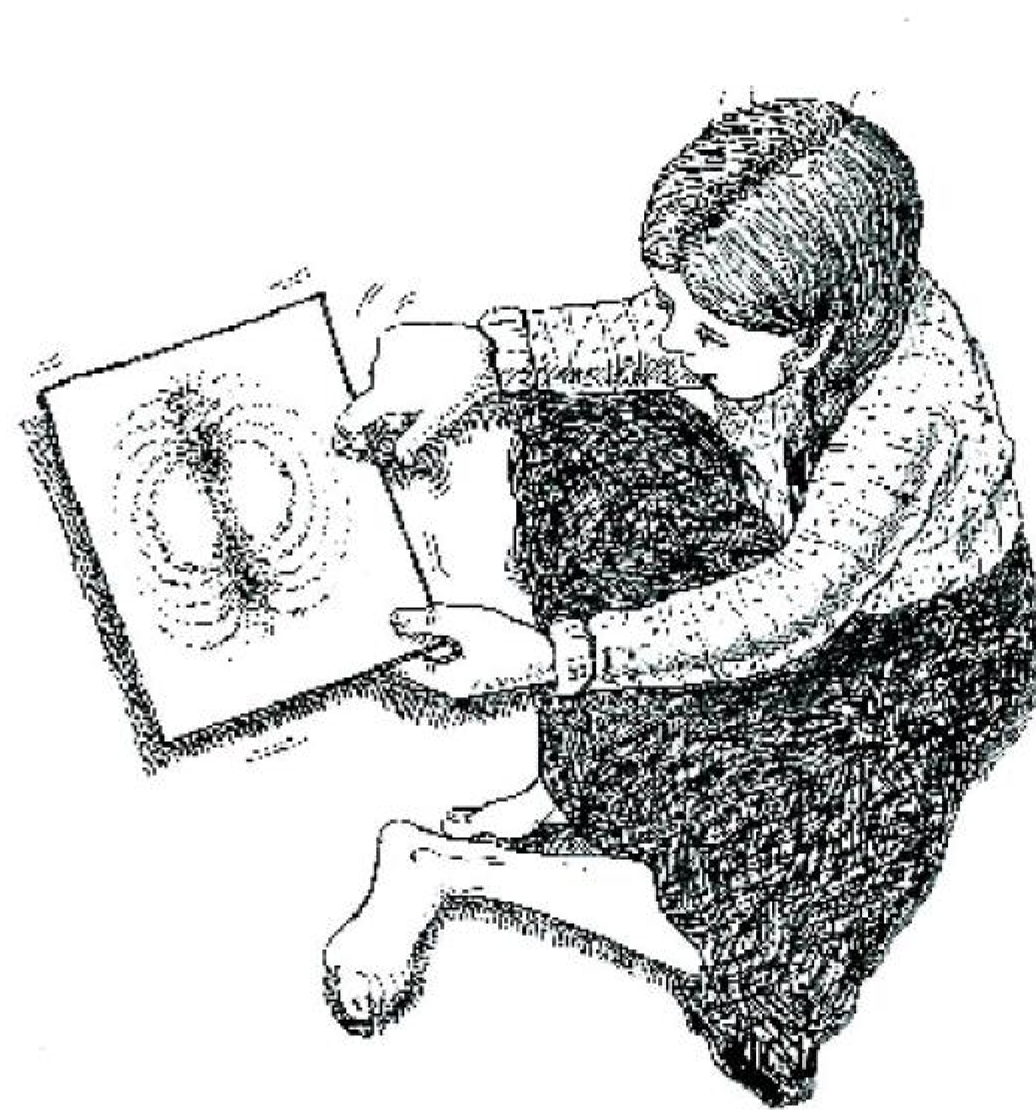

पक्षियों का अनोखा संसार (4)

नाम में क्या रक्खा है!

लेख और फोटो: जितेन्द्र भाटिया

इस दुनिया में हम ज़्यादातर चीज़ों को नाम से पहचानते हैं। लेकिन अगर एक ही नाम के दो दोस्त हों तो? तब कई बार हम उनके नामों के साथ "मोटू", "लम्बू" जैसे विशेषण लगाकर देते हैं। पक्षियों का प्रचलित नामकरण भी कुछ इसी तरह से हुआ है। अधिकांश पक्षियों के नाम उनके किसी खास गुण या रंग-रूप या उनकी आवाज़ के आधार पर रखे गए हैं। लाल मूँछ वाली बुलबुल को हम उसकी ऊँची सिपाहीनुमा टोपी के कारण "सिपाही बुलबुल" कहते हैं। सर्दियों में अकसर दिखनेवाली काली चिड़िया रेडस्टार्ट को अपनी पूँछ बार-बार थिरकने के कारण हिन्दी में "थिरथिरा" कहा जाता है। लेकिन मुश्किल तब आती है जब दुनिया की विभिन्न भाषाओं या प्रदेशों में एक ही पक्षी का नामकरण उसके अलग-अलग गुणों के आधार पर किया जाता है। जैसे, तीखी आवाज़ करने वाले लाल सिर वाले तोते को अँग्रेज़ी में **plum headed parakeet** कहते हैं जबकि अपने देहातों में इसी को हम टुइयाँ तोता नाम से जानते हैं। तब फिर दो अलग भाषाओं वालों को कैसे समझ में आए कि वे दोनों एक ही पक्षी की बात कर रहे हैं? यह संकट सिर्फ पक्षियों के साथ ही नहीं, बल्कि जानवरों, साँपों, कीड़ों, वनस्पतियों और स्वयं वनमानुष और मनुष्य, यानी हर जीवित प्राणी के नामों को लेकर आया। तब वैज्ञानिकों को लगा कि सभी जीवित प्राणियों का एक सर्वमान्य वैज्ञानिक नामकरण भी होना चाहिए।

सोलहवीं शताब्दी के युरोप में ज्ञान और अध्ययन की प्रमुख भाषा लैटिन थी। जीवों और वनस्पतियों के वैज्ञानिक नामकरण की शुरुआत लैटिन में ही हुई। शुरू में इसमें कई मतभेद थे। जीवों के लिए लैटिन में पहली सर्वमान्य दो शब्दोंवाली (**binomial**) नामावली पद्धति विकसित करने का श्रेय स्वीडन के डॉक्टर और वनस्पति शास्त्री कार्ल लिनेयस को जाता है। इन्होंने अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अपनी पुस्तकों *स्पीशीज़ प्लांटेरम* और *सिस्टमा नेचुरे* में पहली बार वनस्पतियों और जीवों के लिए इस नामावली का इस्तेमाल किया। इसी आधार पर आगे चलकर "प्राणीशास्त्रीय नामकरण की अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति" (**ICZN**) बनी जो आज भी पक्षियों सहित सभी प्राणियों के वैज्ञानिक नामकरण का काम कर रही है। परम्परा के अनुसार यह शब्दावली लैटिन भाषा में है। इसी के अन्तर्गत मनुष्य जाति को वैज्ञानिक नाम मिला है – ***Homo sapiens!***

जीवों के नामकरण की इस पद्धति में दो शब्द होते हैं – पहला शब्द पक्षी की प्रमुख जाति को इंगित करता है और दूसरा पक्षी के किसी खास गुण को या उस भौगोलिक क्षेत्र को, जहाँ वह पाया जाता है। कई बार दूसरा शब्द उस जीव को पहली बार ढूँढनेवाले व्यक्ति के नाम पर भी हो सकता है। हमारे देश के विख्यात पक्षीशास्त्री सालिम अली ने केरल में फल-फूल खानेवाले जिस संकटग्रस्त और दुर्लभ चमगादड़ को ढूँढ निकला था, उसका वैज्ञानिक नाम रखा गया है ***Latidens salimali!***

इसके अलावा इस पद्धति से लिखे नाम के पहले शब्द का पहला अक्षर "कैपिटल" में लिखा जाता है। और दूसरे शब्द का पहला अक्षर सामान्य छोटे रूप में लिखा जाता है। ये नाम तिरछी शैली यानी ***italics*** में लिखे जाते हैं।

आनेवाली कड़ियों में हम पक्षियों के स्थानीय एवं अँग्रेज़ी नामों के साथ-साथ उनके वैज्ञानिक नाम एवं उनकी प्रमुख जातियों के बारे में चर्चा करेंगे।

■ तार पर बैठी गुलाबी मैनाएँ (**Rosy starling**) हैं। इस मैना का नीचे का हिस्सा गुलाबी होता है। ये युरोप से आकर सर्दियाँ हमारे देश में बिताती हैं। इनका वैज्ञानिक नाम है – ***Sturnus roseus***

गुलाबी मैना

पुहय्या या पहाड़ी मैना

■ इसी प्रजाति की दूसरी मैना है पुहय्या (**Brahminy starling**)। इसका वैज्ञानिक नाम है – ***Sturnus pagodarum***

तुम देखोगे कि दोनों मैनाओं के वैज्ञानिक नाम में पहला शब्द समान है। केवल दूसरा शब्द भिन्न है!

गुल्ड शक्करखोरा

■ यह खूबसूरत पक्षी – गुल्ड शक्करखोरा – उत्तर-पूर्वी प्रान्तों में पाया जाता है। इसे गुल्ड नाम के वैज्ञानिक ने खोजा था और उनकी इच्छा थी कि इसे उनकी दिवंगत पत्नी के नाम से याद किया जाए। लिहाज़ा शक्करखोरा अँग्रेज़ी में **Mrs. Gould's Sunbird** कहलाता है और इसका वैज्ञानिक नाम है – ***Aethopyga gouldiae***

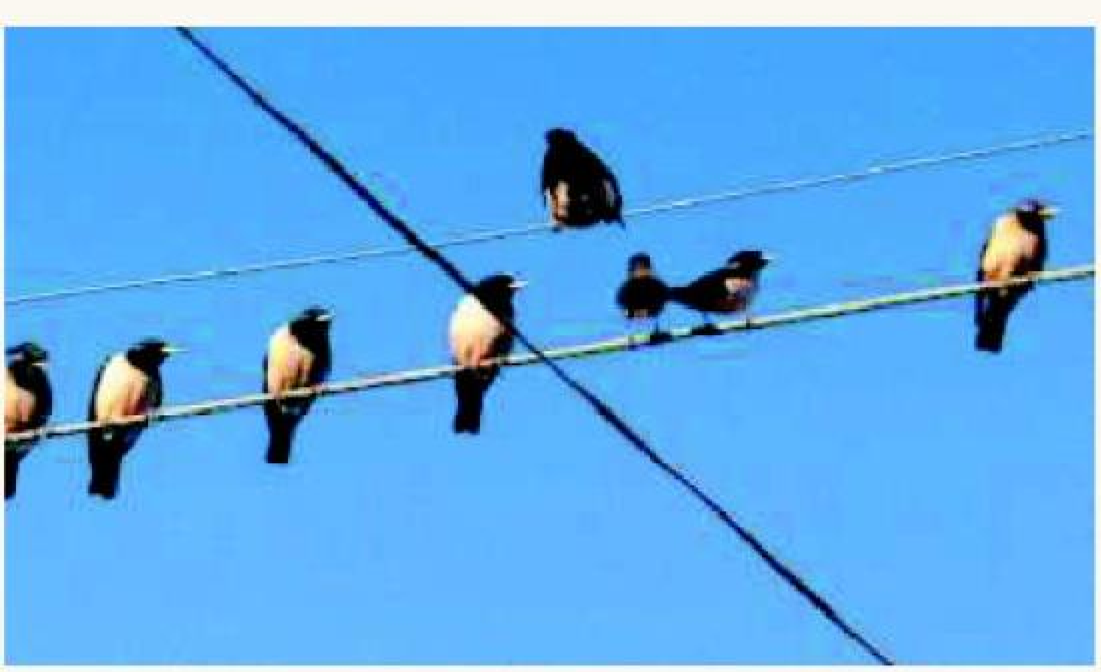

स्वर्ण पीलक

■ यह है हमारे देहातों के सुपरिचित पक्षी स्वर्ण पीलक की मादा। अँग्रेज़ी में इसे **Eurasian Golden Oriole** कहा जाता है। चूँकि यह अपनी प्रजाति का सबसे जाना-माना पक्षी है इसलिए इसके वैज्ञानिक नाम में पहले शब्द को ही दो बार लिखकर इसका नाम दिया गया है – ***Oriolus oriolus***

बाँसुरी जैसे मीठे स्वर में गानेवाले इस पक्षी के बांग्ला भाषा में बड़े सुन्दर नाम हैं – शोना बोऊ (सोने जैसी बहू) और बोऊ कोथा कोऊ (बहू बात करो)

■ हमारे जंगलों का एक और मशहूर पक्षी है **"केसरी सर कस्तूरा"** या **Orange-headed Thrush**

इसके रंग के अनुरूप ही इसका वैज्ञानिक नाम है – ***Zoothera citrina***

केसरी सर कस्तूरा

गाना आए या न आए गाना चाहिए

विष्णु नागर

आओ हम खूब गाएँ। कोई कहे "क्यों गला फाड़ रहे हो?", "गधे आ जाएँगे", "रेंकना शुरू कर देंगे", फिर भी गाओ। मेरे साथ गाओ।

तुम गाओगे तो कोई गधा नहीं आएगा। किस गधे को फुर्सत है तुम्हारा गाना सुनने की! और गधा आ भी जाता है तो यह तुम्हारी सफलता है। किसी को तो तुम्हारा गाना पसन्द आया! किसी को तो तुम्हारे गाने से प्रेरणा मिली!

हम-तुम मोहम्मद रफी नहीं हैं, हम-तुम लता मंगेशकर भी नहीं हैं। न सही हम अमीर खाँ। न सही हम बेगम अख्तर। न सही हम माइकल जैक्सन। न सही हम मेडोना। अरे हम फटे बाँस ही सही। रेंकनेवाले गधे ही सही। हम, हम तो हैं। गाना सुनना हमें अच्छा लगता है। हम गाएँगे भी। अपनी खुशी के लिए गाएँगे। हमारा मन कर रहा है इसलिए गाएँगे। और ज़रूर गाएँगे। किसी को तकलीफ होती है तो धीरे गा लेंगे। मगर गाएँगे। गाना हमारा हक है। हम इस दुनिया में आए हैं भई। मान लो मोहम्मद रफी का गला अच्छा न होता तो क्या वे घर में गाते नहीं? लता जी घर में नहीं गातीं? ज़रूर गातीं।

शायद तुमने गंगूबाई हंगल का नाम सुना हो! वो पक्का गाना गाती थीं। यानी शास्त्रीय गाना गाती थीं। गला उनका खास अच्छा नहीं था। उनकी आवाज़ मर्दाना थी। मगर गाती थीं तो मज़ा आ जाता था। बड़े-बड़े गलेबाज़ उनके सामने पानी भरते थे। यानी गाने के लिए अच्छा गला ज़रूरी नहीं।

चलो हम गंगूबाई हंगल न सही। हम, हम तो हैं। अपने लिए तो हम गा सकते हैं। अपने को तो सुना सकते हैं। चलो, हममें गाने की कोई प्रतिभा नहीं। गाना गाना हमने सीखा नहीं। गाना गाने का कोई अभ्यास भी नहीं किया। लेकिन हमारा दिल चाहता है कि हम गाएँ। तो हम गाएँगे ही।

कितना अच्छा लगता है गाने के बाद! कितना मज़ा आता है! उस मज़े को हम क्यों खोएँ? हम तो गाएँगे भई। जिसे अपने कान बन्द करने हो, कर ले। चला जाए इस कमरे से। अच्छा चलो हम ही चले जाते हैं इस कमरे से। लेकिन कभी-कभी हमको भी तो सुन लिया करो। क्या पता किसी दिन हम किशोर कुमार बन जाएँ। या आशा भोंसले बन जाएँ। याद रखना तब तुम हाथ जोड़ोगे, पैर पकड़ोगे तब भी हम गाना नहीं सुनाएँगे। हम भी अकड़ जाएँगे। इसलिए बच्चू आज हमसे न अकड़ो। हम बताए देते हैं, हम किसी से कम नहीं!

चित्रः अतनु राय

मुठभेड़

अमित कुमार

मैंने जब उसे देखा तो एकदम सिहर गया। प्लास्टिक सर्जन के पास एक से एक विभत्स केस आते हैं पर वह आदमी जिसकी उम्र लगभग 48 वर्ष के आसपास थी, के चेहरे पर न तो नाक थी, न ही आँखें। मुँह की जगह लटके हुए होंठ थे और तुड़े-मुड़े से नाम मात्र के कान। गले पर लटकी झुर्रीदार त्वचा उसके चेहरे को और कुरूप बना रही थी।

मैं उड़ीसा के एक ज़िला चिकित्सालय में बतौर प्लास्टिक सर्जन नियुक्त था। मैंने उसकी जाँच की और बताया कि उसके चेहरे को कुछ हद तक ठीक किया जा सकता है। इसके लिए थोड़े-थोड़े महीनों के बाद कम से कम 6 ऑपरेशन करने होंगे। वह एकदम तैयार हो गया तो मुझे थोड़ी हैरानी हुई कि 20 सालों से उसने इलाज की कोशिश क्यों नहीं की!

ऑपरेशन से पहले की ज़रूरी जाँच और काउंसलिंग के लिए वह मेरे पास चार-पाँच बार आया। अब वह मुझसे काफी खुल गया था। एक दिन मैंने उससे पूछा कि उसकी यह हालत कैसे हुई? मेरी इस बात पर वह थोड़ा चौंका। पर जब उसने बताना शुरू किया तो बताता ही गया –

"यह कोई बीस-इक्कीस साल पहले की बात है। उस समय मैं बीस साल का जोश से भरा नौजवान था। उड़ीसा के जंगलों में हम एक जानवर की तलाश में निकले थे। हम बड़ी बेफिक्री से चले जा रहे थे क्योंकि हम जंगल के चप्पे-चप्पे से वाकिफ थे। जब ऊबड़-खाबड़ चट्टानी रास्ते शुरू हुए तो हम चौकन्ने होकर चलने लगे। हम जिसकी तलाश में थे उसकी माँद इन्हीं चट्टानों की किसी दरार में थी। हम तीन लोग थे। मैं सबसे छोटा था। इस तरह के काम का यह मेरा दूसरा अनुभव था। पर जंगल और उसकी दुनिया से मैं अंजान नहीं था। हम इशारों और संकेतों की भाषा में बात करते हुए एक-एक कदम फूँक-फूँककर रख रहे थे। अचानक सबसे आगे चल रहे टीम के मुखिया ने 'चीची ची ची चिड़क, ची चीची ची चिड़ाक' की ध्वनि निकाली। यह संकेत था कि माँद मिल गई है। और अब हमें अतिरिक्त सावधानी बरतनी है।" इतना कहकर वह शान्त हो गया। उसने अपने चेहरे पर कई बार हाथ फेरा। चेहरे पर कोई भाव-भंगिमा नहीं बन रही थी। बन ही नहीं सकती थी। पर उसके इस तरह के व्यवहार से लगा कि उसे 20 वर्ष पहले किए अपने काम पर पछतावा था। वह कुछ बेचैन भी था। मैंने उसके लिए पानी मँगाया। पानी पीकर वह थोड़ा सामान्य हुआ।

"हम भालू के बच्चे को पकड़ने जा रहे थे। सात-आठ महीने के बच्चों को पकड़ना सबसे ज़्यादा फायदेमन्द होता है। इस उम्र के बच्चे को पालना और प्रशिक्षित करना आसान होता है इसलिए इसकी कीमत भी ज़्यादा मिलती है।"

"जंगल में भालुओं की संख्या तो सीमित ही रही होगी! भालू के बच्चों के खरीदार भी तो ज़्यादा नहीं होते होंगे! फिर यह काम तुम्हारी जीविका कैसे हुई?" मैंने पूछा।

"साहब, खेती करना हमारा मुख्य पेशा था। साथ ही जंगली जानवरों को पकड़ना और उन्हें बेचने का काम भी मैं कर लिया करता था। कुछ नकद आमदनी हो जाती थी। लेकिन इसे हमारा आदिवासी समाज बड़ी हेय दृष्टि से देखता था।" वह बोला।

उसकी बात से मुझे अपने बचपन के दिन याद आ गए। मैं कोई पाँचवीं का

जगह इतनी सँकरी थी कि मैं लाख कोशिश करके भी उन शावकों को नहीं दबोच सकता था।

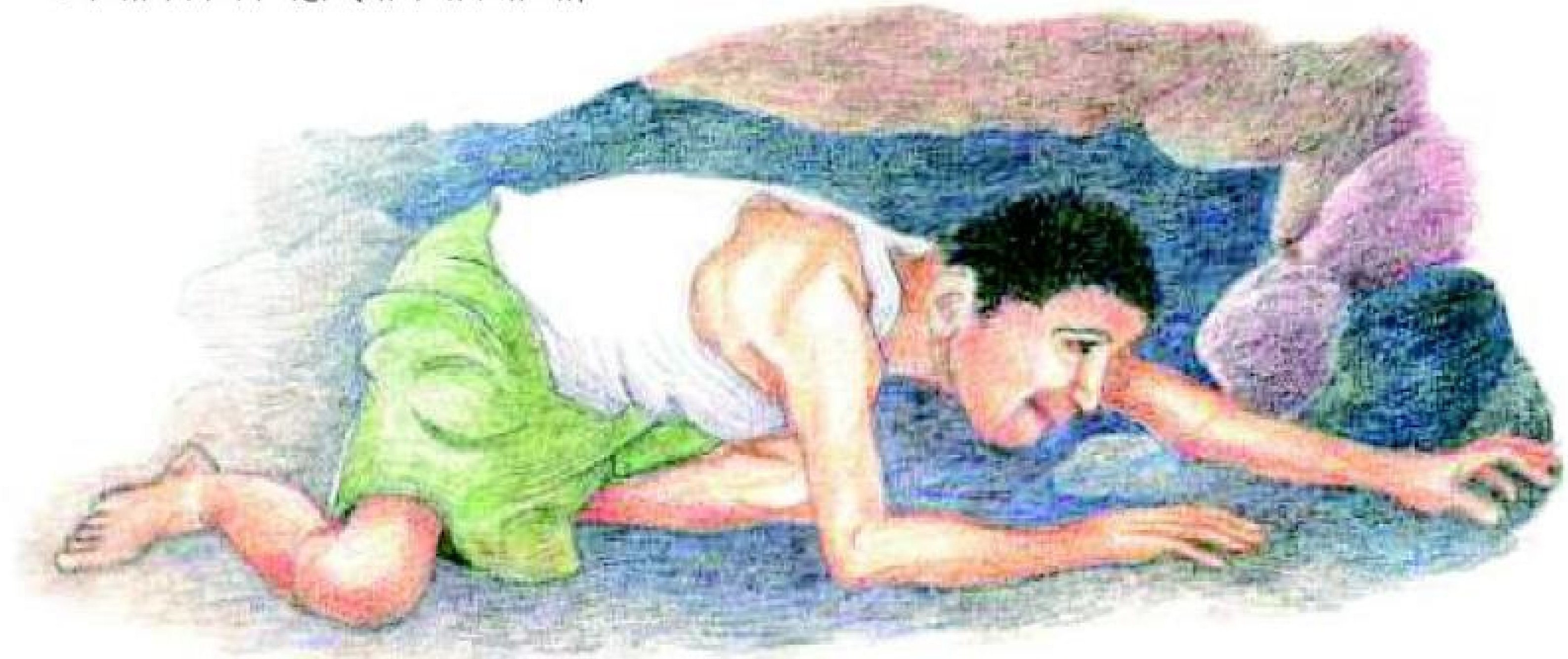

इस वर्णन से मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मेरी बेचैनी बढ़ गई। उस दृश्य को सोचकर ही धड़कनों की रफ्तार बढ़ गई थी।

"उस तीसरे आदमी का क्या हुआ।" मैंने पूछा।

छात्र रहा होऊँगा। हमारा शहर बहुत छोटा था। आबादी भी कम थी। हमारे मोहल्ले में हर महीने के आखरी रविवार को डमरू बजाते हुए एक मदारी आता था। उसके कँधे पर लबादेनुमा एक पोटली लटकी होती। काँख में छड़ दबाए एक हाथ से भालू की रस्सी पकड़े और दूसरे हाथ से डमरू बजाता हुआ जब वह मोहल्ले में घुसता तो सारे बच्चे शोर मचाते हुए उसकी तरफ भागते थे। मोहल्ले के बीच में नीम के पेड़ के नीचे वह अपनी पोटली उतारता और डमरू बजा-बजाकर गाता। जब भीड़ जुट जाती तो छड़ी के इशारे पर वह भालू को नचाता था। भालू पिछली दो टाँगों पर खड़ा होकर बेढ़ब तरीके से झूमता-हिलता हुआ गोल-गोल चलता। थोड़ी देर के इस तमाशे के बाद मदारी भालू को थपकी देकर बैठा देता। फिर वह पोटली से एक कपड़ा निकालकर ज़मीन पर बिछा देता जिस पर लोग अपने-अपने घरों से पैसा, आटा, चावल या आलू लाकर रखते जाते।

बचपन की यादें एकदम ताज़ा हो आईं। "फिर क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"भालू की माँद तो हमें दिख गई थी पर अभी यह पता लगाना था कि भालू माँद में है या नहीं। हम अपने साथ खूब पका कटहल और तेज़ गन्धवाले कई तरह के जंगली फूल लाए थे ताकि इनके बीच हमारी गन्ध छिप जाए। भालू की सूँघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है। हमने कटहल उसकी माँद की ओर फेंक दिया। चट्टान पर गिरते ही पका कटहल फूट गया। उसकी महक चारों ओर फैल गई। कुछ देर के इन्तज़ार के बाद जब मादा भालू कटहल के पास उसे खाने नहीं आई तो हमने समझ लिया कि वह माँद के आसपास नहीं है। हमें तेज़ी से काम करना था। एक आदमी सामने की ऊँची चट्टान पर चढ़कर निगरानी के लिए तैनात हो गया। हम दो लोग चट्टानी दरार में बनी माँद की ओर बढ़े। माँद में भालू के दो शावक दिखे। मैंने पेट के बल लेटकर शावकों को पकड़ने की कोशिश की तो वे सरककर भीतर दुबक गए। जगह इतनी सँकरी थी कि लाख कोशिशों के बावजूद मैं उन्हें दबोच नहीं सकता था। तब मैंने अपने साथी को कहा कि वह दूसरी तरफ जाकर दरार में लाठी डाले और उन्हें खदेड़े। ताकि वे इस तरफ आ जाएँ और मैं उन्हें बाहर खींच सकूँ। वह दरार की दूसरी ओर गया। मैंने सोचा थोड़ा ओट में हो लूँ जिससे शावक समझे कि मैं चला गया हूँ। मैं अभी उठा ही था कि हलकी गुर्राहट से सिहर गया। गुर्राहट मेरी एकदम बाईं ओर से आ रही थी। उधर नज़र पड़ते ही मेरे होश फाख्ता हो गए। मादा भालू अपने पिछले पैरों पर खड़ी थी। क्षण भर के लिए आँखें मिलीं और फिर बिजली की तेज़ी से उसने पंजा मारा। अगले ही पल मेरा चेहरा उतर गया, मुझे बस इतना ही एहसास हुआ। और मैं सामने की चट्टान पर कूद पड़ा। मुझे बस नीचे गिरते जाने तक का याद रहा। फिर क्या हुआ मुझे नहीं पता।" इतना कहकर वह शान्त हो गया। उसकी साँसें तेज़ हो गई थीं। धड़कनें तो मेरी भी बढ़ रही थीं। वह अपने चेहरे पर हाथ फेरने लगा। जैसे उस दिन को महसूस कर रहा हो।

"उन दोनों के साथ क्या हुआ?" मेरे अन्दर सिहरन-सी उठी। मेरा सवाल सुनकर उसने अपने चेहरे पर हाथ फेरना रोक दिया। "जब मुझे होश आया तो बस दर्द और अँधेरा था। बहुत दिनों बाद शायद नौ-दस महीने बाद मुझे बताया गया कि मेरे गिरने के बाद मादा भालू मेरे दूसरे साथी की ओर लपकी। तब तक चौकसी कर रहा हमारा तीसरा साथी उसकी रक्षा के लिए मशाल जलाकर भालू के सामने कूद पड़ा। उसे उम्मीद थी कि आग देखकर वह पीछे हट जाएगी पर वह गलत निकला। मादा और आक्रामक हो गई। मेरे साथी ने अपने बचाव में मशाल से भालू पर कई वार किए। इससे उसके थोड़े बाल जल गए थे। जवाब में वो मादा कुछ पीछे हटी और फुर्ती-से मेरे साथी पर झपटी। खुद को बचाने की कोशिश में मशाल उसके हाथों से छूट गई। उसने भागने का प्रयास किया पर गिर पड़ा। चट्टान पर गिरते ही उसने अपने बाएँ पैर पर भालू के पंजों का वार महसूस किया, फिर अथाह पीड़ा। पंजों के वार से माँस का लोथड़ा निकल आया था। वहाँ से रिसता खून चट्टान पर फैलने लगा था। उसने उठने की कोशिश की पर सब बेकार। अगले ही पल मादा भालू उस पर सवार थी।"

उसके इस वर्णन से मेरे रोंगटे खड़े हो गए। मेरी बेचैनी बढ़ गई। हालाँकि मैं एक सर्जन हूँ और रक्त-माँस, चीड़-फाड़ से मेरा रोज़-रोज़ का वास्ता है। पर उस दृश्य को सोचकर ही मेरी धड़कनों की रफ्तार बढ़ गई थी।

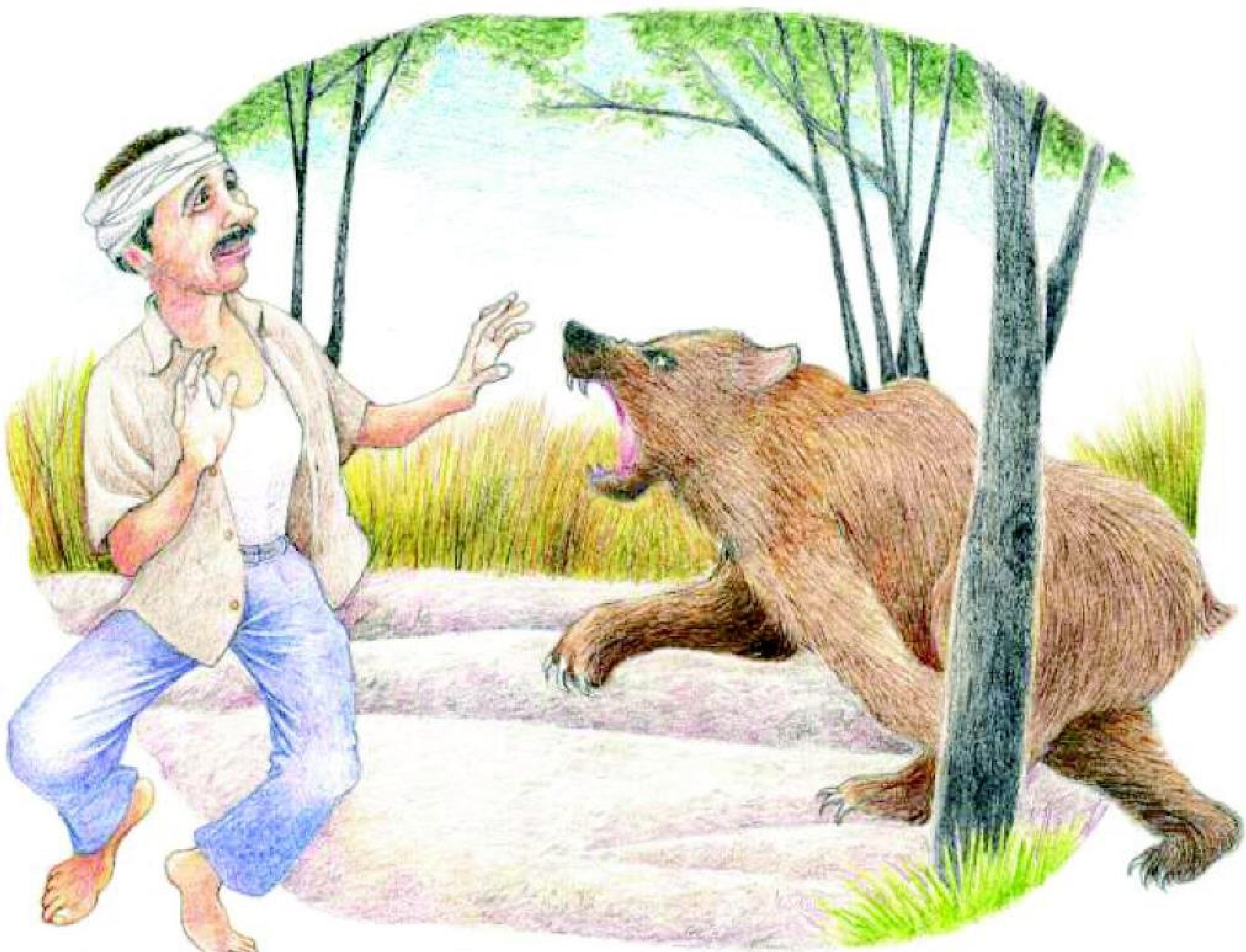

चित्रः दिलीप चिंचालकर

"उस तीसरे आदमी का क्या हुआ।" मैंने पूछा।

बोलने के पहले उसने अपना मुँह पोंछा। "यह सब देखकर उस तीसरे आदमी की हिम्मत जवाब दे गई। वह तेज़ी-से भागा। उसे भागते देख मादा भालू दूसरे आदमी को छोड़कर उसकी तरफ दौड़ पड़ी। कुछ दूर पीछा करने के बाद शायद वह अपनी माँद में लौट गई। गाँव पहुँचकर जब उसने इसकी सूचना दी तो बीस-पच्चीस लोग भाला, तलवार, बरछी लेकर जंगल की ओर भागे। हमारे साथी की बड़ी विभत्स लाश खाई में पड़ी थी और मैं लगभग मौत के करीब बेहोश पड़ा था। मुझे गाँव लाया गया। किसी ने इसकी खबर पुलिस को दे दी। पुलिस और वन विभाग के डर से मेरे घरवालों ने रातों-रात मुझे गाँव से बहुत दूर एक रिश्तेदार के घर पहुँचा दिया। वहाँ मेरा घरेलू इलाज होने लगा। दर्द और इलाज के अभाव में मैं लगभग आधी बेहोशी में रहता था। फिर धीरे-धीरे ठीक होने लगा। इस घटना को बीस साल हो गए हैं। और मैं आज इस रूप में आपके सामने हूँ।"

मैंने एक गहरी साँस ली। अपने जीवन में मैंने इतनी रोमांचक और खतरनाक घटना नहीं सुनी थी। कुछ देर तक हम दोनों शान्त बैठे रहे। बिलकुल खामोश। दोनों के अन्दर अब भी वो घटना घूम रही थी। शाम का सूरज जब खिड़की के रास्ते अन्दर आने लगा तो उसने जाने की इजाज़त माँगी। कुछ दिनों बाद उसका पहला ऑपरेशन हुआ। परिणाम अच्छे रहे। फिर और ऑपरेशन हुए। छह ऑपरेशनों के बाद उसका चेहरा बहुत हद तक ठीक हो गया। इस घटना को हुए लगभग दो साल हो गए हैं पर न तो वह मुझे भूला है और न मैं उसकी कहानी।

चित्रः जगदीश जोशी

रात

अनमित्र राय

क्या तुम में से कोई रात को पहचानता है? रात मेरी दोस्त है। बचपन की दोस्त। आज तुम्हें उसी रात की कहानी सुनाता हूँ...

मैं इन दिनों लिखता हूँ – कविताएँ, कहानियाँ वगैरह। और रात नौकरी करती है, बहुत बड़ी नौकरी। मेरा तो यह हाल है कि समय खाकर, समय गूँथकर, समय के साथ गप्पबाज़ी करने के बाद भी कुछ समय बच जाता है। और उसका? वक्त के साथ खेल करने की फुरसत उसे कहाँ! बल्कि अगर कोई बोनस में उसे कुछ वक्त दे दे, तो फिर देखना उसे!

खैर, जो भी हो, पास-पास रहने के बावजूद मेरी उससे न के बराबर मुलाकात हो पाती है – बस महीने में एक या दो बार। पिछली बार मिली थी तो अपने दफ्तर की कहानियाँ सुना रही थी। उसके काम की बातें सुनने में मुझे इतना मज़ा आ रहा था कि क्या बताऊँ!

गर्मियों में एक तरह का काम और जाड़ों में दूसरी तरह का। तुम सोच रहे होगे कि यह क्या बात हुई। पहले तो मुझे भी ऐसा ही लगा था। गर्मियों में पौने उन्नीस और ठण्ड में सत्रह बजते ही रात अपने दफ्तर की दीवार पर एक-एक कर तारे जड़ने लगती है। यह सब मनचाहा नहीं होता। भई दफ्तर के कुछ नियम-कायदे भी तो हैं। कब कौन-सा तारा कहाँ जड़ने से सप्तर्षि, कब शिकारी और उसका कुत्ता (मृग नक्षत्र) बनेंगे, इसका भी तो खयाल रखना पड़ता है!

तारों की एक परेशानी भी है, पता है? उन लोगों की कभी-कभी तबीयत खराब हो जाती है। अगर पेट दुखे या खट्टी डकार आएँ, तो

दवा खाते ही एकदम ठीक हो जाते हैं। पर सोचो कि अगर कोई और कठिन बीमारी हो जाए तो! लम्बी बीमारी के बाद हो सकता है कि तारा मर ही जाए। तब! तब क्या होगा! उस तारे की जगह को क्या यूँ खाली छोड़ा जा सकता है, बताओ। तुरन्त ही छायापथ (ऑर्बिट या कक्ष) को फोन करना पड़ता है – कृपया एक तारा भेज दीजिए।

बात सिर्फ तारों की नहीं है। रात के और भी कई काम हैं। जैसे समझो चाँद। अब चाँद को कब कहाँ कितनी चाँदनी फैलानी है, यह भी उसे रात को ही बताना पड़ता है। बात यहीं खत्म नहीं होती। और भी कई सारे काम हैं रात के।

रात बता रही थी कि ये जो पुच्छल तारे (धूमकेतु) हैं, उन्हें भी उसे ही बताना पड़ता है कि कौन कितनी गति से दौड़ेगा। क्या कहा? पुच्छल तारों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है? अगर ये पुच्छल तारे किसी नटखट बच्चे की तरह इधर-उधर दौड़ते रहे तो तारों का क्या हाल होगा, सोचा है? उन्हें भागने की जगह भी नहीं मिलेगी। बस पूँछ के झपट्टे से ही आधे तारे मर जाएँगे। और तब अगर छायापथ ने कहा कि एक साथ इतने तारे नहीं भेज सकती! सप्लाई नहीं है। तब क्या होगा? रात को तो कुछ दिखाई ही नहीं देगा।

खैर छोड़ो, देखा समय कहाँ से कैसे निकल गया। असली बात पूछना तो रह ही गया। अमावस के समय रात को कुछ इत्मीनान रहता है। काम का दबाव कम रहता है। सिर्फ तभी मिलना हो सकता है। पर यह तो पूछना रह ही गया कि अगली अमावस को फिर कुछ गपशप करेंगे कि नहीं. . .

अनुवादः टुलटुल विश्वास

मेरा पन्ना

उस दिन मैं बहुत खुश हुई...

हे! पता है आज मैं बहुत खुश हूँ। पर क्या तुम्हें ये पता है कि मैं इतनी खुश क्यों हूँ? मैं इसलिए खुश हूँ क्योंकि आज शाम को मैं एक पार्टी में जानेवाली हूँ। इस साल मैंने खूब मन लगाकर पढ़ाई की और मुझे अच्छे नम्बर मिले। और इसलिए आज मेरे टीचर मुझे क्लास पार्टी पर ले जानेवाले हैं। उन्होंने बताया कि हम आज एक रैस्टोरेंट में जाएँगे। मुझे तो अपने कानों पर यकीन ही नहीं हुआ। मेरे लिए तो यह बहुत ही बड़ा सरप्राइज़ था।

मैंने अपनी पसन्द की लाल-काली ड्रैस पहनी। ओह! मेरा रुमाल कहाँ गया? अरे यह रहा!! "मम्मी, मैं जा रही हूँ। बाए!"

मैं बहुत ही उत्सुक थी क्योंकि मेरे दोस्त भी वहाँ होंगे।

जब हम रैस्टोरेंट पहुँचे तो हमने हाथ धोए। फिर हम टेबल के चारों ओर बैठ गए। सर ने हमें बताया कि रैस्टोरेंट में खाते समय कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए। हमने अपने गरदन के चारों ओर एक कपड़ा लगाया ताकि खाना हमारे कपड़ों पर ना गिरे। खाना बहुत ही स्वादिष्ट था। मैंने एक खास तरह की रोटी, सलाद, दही वगैरह-वगैरह खाया। हमारे खाने के बाद वो हमारी प्लेट ले गए और एक कटोरे में गर्म पानी और नींबू हमारी टेबल पर रख गए। मुझे तो समझ नहीं आया कि इसका क्या करूँ? तब सर ने बताया कि इसे हमें हाथ धोने के लिए इस्तेमाल करना है। हमने अपने हाथ धोए और फिर सर ने बिल का पेमेंट किया।

जब हम रैस्टोरेंट से निकल रहे थे तो दरवाज़े पर खड़े एक आदमी ने हमें थैंक्स कहा। मुझे तो मेरी पार्टी बहुत अच्छी लगी। तुम्हें कैसी लगी मेरी पार्टी?

–अंजलि गुप्ता, डिवाइन चाइल्ड हाई स्कूल, मुम्बई, महाराष्ट्र

बिल्ली रानी

दबे-दबे पाँव से आती
घात लगाकर चूहे खाती
खुद कुत्ते से डरती है
पर चूहों पर मरती है
चूहे हैं उससे परेशान
कौन बचाए उनकी जान
पीकर दूध करे शैतानी
कैसी नटखट बिल्ली रानी

—रितुपाल चौहान, पाँचवीं,
फलौदी, जोधपुर, राजस्थान

आफत की बारिश

यह बात हमारी गर्मियों की छुट्टियों की है। उस समय 15-16 जून 2013 का दिन था। मैंने लोगों से सुना कि डिडसारी में हगड़ा बढ़ी हुई है और आधा गाँव गंगा में बह गया है। सब लोग स्कूल में रह रहे हैं। गाय, भैंस, खच्चर और लोग सब साथ रह रहे हैं। उनके खाने-पीने के लिए भी कुछ नहीं बचा है। सब लोग भूखे हैं। कोई लोग बोल रहे हैं कि डोडिताल में बादल फटा है तो कोई बोल रहे हैं कि क्योंकि गंगोत्री में इस साल सप्ताह हुआ इसलिए बादल फटे क्योंकि धाम में कभी सप्ताह नहीं होते थे। गंगोरी के बाद रास्ता बन्द है। गंगोत्री में राहत मिल रही है। बाज़ार में लालटेन मिल रही है। वह लालटेन 300 रुपए की है। पर उसे लेने बहुत दूर जाना पड़ रहा था। भटवारी में यात्रियों को लाने के लिए जहाज़ आया था। लाल वाले जहाज़ में 5 सीट थीं। दूसरे वाले थोड़े लाल थोड़े सफेद वाले जहाज़ में दस सीट थीं। पाँच इधर, पाँच उधर। दो पायलेट थे। वह यात्रियों को ले जा रहे थे। कुछ यात्री पैदल भी जा रहे थे। जिन यात्रियों को जहाज़ में ले गए वो सरकार से खुश हो गए। अब रोड भी बना रहे हैं। पहले दिन बनी रोड बारिश से दूसरे दिन टूटती जा रही है। जब यात्री हमारे गाँव आए हमारे गाँव वालों ने आटा, चावल, दाल, आलू-प्याज़ इकट्ठा किया और उनको खाना खिलाया। वो रोते-रोते खाना खा रहे थे और बोल रहे थे यहाँ के लोग बहुत अच्छे हैं। उन्होंने बोला क्या आप हमें आगे का रास्ता बताएँगे। तब मेरी माँ ने उन्हें रास्ता बताया। कुछ बूढ़े लोग खच्चर पर बैठे। सारे लोग फाड़ के रास्ते गए। गंगोरी से सरकारी बस लगी थी वो वहाँ से यात्रियों को फ्री में ले जा रही थी। कहीं-कहीं लोग यात्रियों को लूट रहे थे। होटल वाले बहुत महँगा खाना दे रहे थे। डिडसारी में एक जगह पर पानी का एक गिलास बीस रुपए में दे रहे थे। वैसे तो पानी फ्री में मिलता है।

आपदा मुझे अच्छी नहीं लगती है। यह आपदा नहीं आनी चाहिए। अब हमारा स्कूल भी खुल गया है। अब पढ़ाई हो रही है। अब मुझे अच्छा लग रहा है। मैडम पैदल आती-जाती हैं। गंगोरी में बहुत सड़क टूटी है। बहुत सारे गाँवों में आपदा आई है। हमारे गाँव में गंगा नहीं आनी चाहिए। मुझे बहुत डर लगता है कि हम कहाँ जाएँगे, कहाँ भागें। कहीं हम बह तो नहीं जाएँगे।

—अरविन्द, पाँचवीं, गणेशपुर, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

मेरा पन्ना

दिघाड़ू के इण्डो

तीन-चार हफ्ते पहले मैं और मेरी बहन गोरू होस्टल से घर गए। लगातार पानी गिर रहा था। जैसे ही मौसम खुला हम लकड़ी बीनने गए। गिरीजा, मेरी काकी इन्दरा, प्रीतभान, मेरी सहेली दीपा, आया और मैं। हमारा कुत्ता भी साथ गया।

गाँव के पास पहाड़ी पर प्रीतभान लकड़ी काटने पेड़ पर चढ़ा। दीपा और उसकी माँ, आया, गिरीजा पहले ही अलग हो गए थे। प्रीतभान डंगाल काटकर गिरा रहा था और इन्दरा और आया (माँ) बीन रही थीं। मैं थोड़ी दूर आगे बढ़ गई।

अचानक झाड़ियों के बीच से एक दिघाड़ी (मोरनी) ज़ोर-से भागी और उड़ने लगी। आया ने कहा, "सू उड़यों (क्या उड़ा)?" जब मैंने बताया कि एक दिघाड़ी थी। तो वो मेरे पास आकर झाड़ियों में झाँकने लगी। फिर झाड़ियों में घुसकर अपने खोलया में कुछ भरने लगी। इन्दरा भी वहाँ आई। उसने पूछा "सू उठई रई जे?" आया बोली, "लड्डू!!!"

दिघाड़ी का नाम सुनते ही प्रीतभान कुल्हाड़ी फेंककर दिघाड़ी के पीछे कब्बडी लगाया (तेज़ी-से भागा)। कुत्तरया भी तेज़ी-से भागा।

आया, इन्दरा और मैंने लकड़ी के गट्ठर बनाया और गट्ठर सर पर रखके घर चले। आया बहुत खुश थी। बा (पिता) का आँख कमज़ोर होने के कारण हमारे यहाँ शिकार ना के बराबर हो पाता है। इन्दरा का भी जी ललचा रहा था। आया बोली, "पाँच छेंगा, बे तूने भी दिस (पाँच हैं। दो तुझे भी देंगे)।" मैं बहुत ही खुश थी, आज तो दिघाड़ू के इण्डो की सब्ज़ी बनेगी।

घर पास आया तो मैं आगे-आगे दौड़ती हुई घर भागी। मैंने बा को बताया कि माँ खोलया में दिघाड़ू के पाँच इण्डो ला रही है। आया भी आई। हम सब दिघाड़ू और उसके इण्डो के बारे में ही बात करते रहे। आया बोली, "हम इण्डो वापस रख देते हैं। उसके पीछे दिघाड़ी आएँगी। हम मरासी (फन्दा) लगाकर पकड़ लेंगे।" बा दादी घर से मरासी उठा लाया।बा-आया वापस जंगल गए। इण्डो रख दिया और मरासी लगा आए। मैं और गोरू बहाना बनाकर घण्टे-दो घण्टे में छिप-छिपाकर मरासी देखने चले जाते। शाम के करीब 4 बजे होंगे। अभी गईया जंगल से नहीं लौटी। माँ अगले दिन चूड़ी बेचने जाने की तैयारी कर रही थी। बा पास में बैठा मदद करा रहा था। गोरू ने फिर मरासी और दिघाड़ू की बात चला दी। तभी हमारा भाई किरण कुमार बोला, "बा अगर हम दिघाड़ी पकड़ लाए, तो उन इण्डो को कौन देखेगा? चेयोले तो जन्म से पहले ही मर जाएँगे। हम जब थोड़ा-सा बीमार पड़ते हैं, तो तुम कितना परेशान हो जाते हो। अगर दिघाड़ू न खाएँ तो क्या होगा? बा तुम मरासी निकालकर ले आओ।" वो बहुत परेशान लग रहा था। बा उसको दुखी देखकर चुप हो गया। बा है ही ऐसा। एकदम कोमल। वो उठा और चुपचाप बाहर चला गया। थोड़ी देर बाद वो मरासी लेकर लौटा। बोला, "नहीं खाना दिघाड़ू और नहीं खाना उसका अण्डा।"

–रेशना सिंह, 13 साल, अरण्यावास, भोपाल

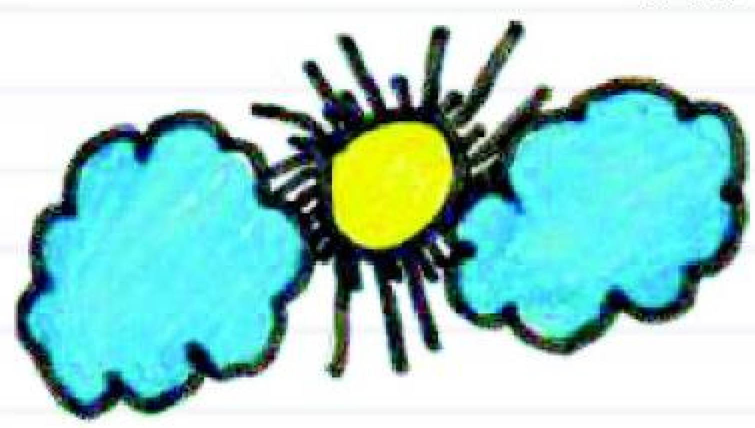

–आशीर्वाद मोहन चमोली, तीसरी, टुंटोवाला, देहरादून, उत्तराखण्ड

चित्रों की भाषा

खुआन मुनोज़ का यह काम जब पहली बार प्रदर्शित हुआ था तो ये सब हँसते हुए लोग गैलेरी के एक कोने की तरफ मुँह किए खड़े हुए थे।

इसका एक ठोस कारण है। मुनोज़ चाहते थे कि जब कोई व्यक्ति गैलेरी में काम देखने आए तो उसे इस काम का पिछला भाग पहले दिखे। फिर यह जानने के लिए कि स्टैंड पर खड़े ये लोग आखिर क्या देख या कर रहे हैं उसे मजबूरन गैलेरी के कोने में घुसना पड़े।

अब उस व्यक्ति का हाल सोचो! अचानक ही वह पाता है कि वह एक कोने में फँस गया है और स्टैंड पर खड़ी ये सब आकृतियाँ उस पर हँस रही हैं। मुनोज़ का कहना है कि आर्ट गैलेरी में हम दर्शक की तरह जाते हैं। पर जिस तरह उन्होंने अपने काम को रखा है उस स्थिति में खुद दर्शक एक देखने की वस्तु बन जाता है। और दर्शक और उस कलाकृति के बीच एक सम्बन्ध बन जाता है। यह सम्बन्ध कई रूप ले सकता है। मुनोज़ के सन्दर्भ में यह एक व्यंग्यात्मक तरीके से उभरता है पर अलग-अलग कलाकार इसे अलग-अलग रूप देते हैं।

शायद मुनोज़ कहना चाहते हैं कि जब तक कला और दर्शक के बीच यह सम्बन्ध उजागर ना हो जहाँ कला दर्शक को सोचने पर मजबूर करे और दर्शक कला के अस्तित्व और उद्‌देश्य पर मनन करे तब तक कला की परख अधूरी रह जाती है। कला और उसके पारखी का एक अटूट सम्बन्ध है और पारखी के सक्रिय रूप से दिलचस्पी लेने के बिना कला अधूरी है। यह कलाकृति लकड़ी और रेज़िन की बनी है। ज़रा गौर से देखो, ये सब आकृतियाँ एक ही व्यक्ति की हैं। मुनोज़ ने ऐसा क्यों किया होगा?

अगर मुनोज़ इस काम को कहीं और रख दें जैसे एक खूब भीड़-भाड़ वाली सड़क के फुटपाथ पर या और कहीं तो इसका तात्पर्य कैसे बदल जाता? पहले मूर्तिकला अकसर स्थापत्य कला **(Architecture)** का एक अभिन्न हिस्सा हुआ करती थी जैसे, मन्दिरों और महलों में। पर अब कलाकार इन्हें अलग-अलग सन्दर्भों में स्थित कर मूर्तिकला का दायरा फैला रहे हैं। इस नए नज़रिए वाली मूर्तिकला को प्रस्थापन **(Installation)** कहा जाता है।

शेफाली

चिम्मनलाल के पायजामे

अनिल सिंह

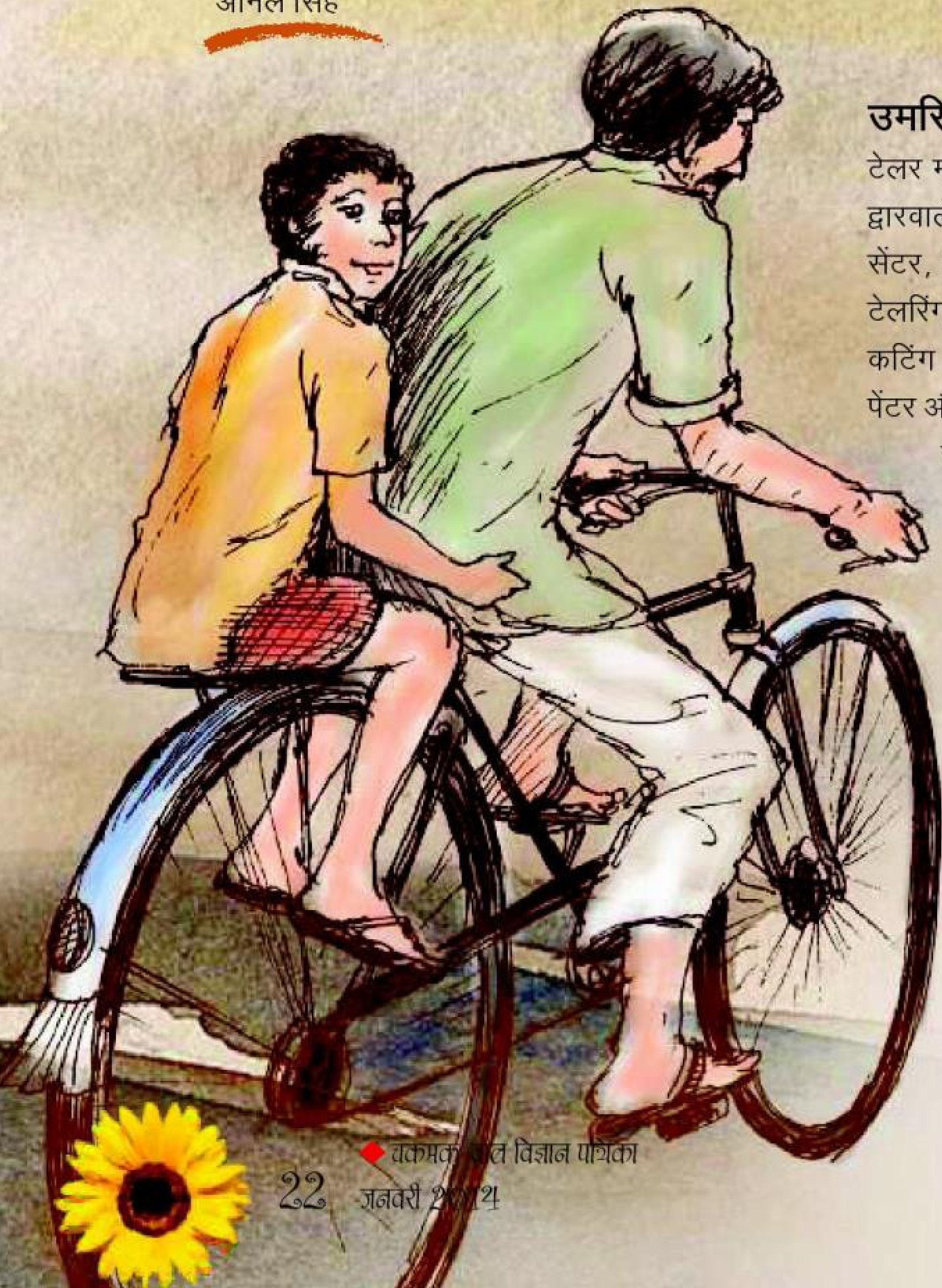

उमरिया का वो छोटा-सा बाज़ार बड़ा दिलचस्प था। यूँ तो वो टेलर मार्केट कहलाता, पर कौन-सी दुकान वहाँ नहीं थी! प्रकाश द्वारवाले कोने से शुरू करें तो इस लाइन में थाने के सामने फ्रूट सेंटर, फिर कोटूमल की कपड़े की दुकान, फिर बाबू खाँ की टेलरिंग शॉप, शेख भाइजान टॉर्च और तालेवाले, जॉनी हेयर कटिंग सैलून, श्याम लॉण्ड्री और ड्राइक्लीनर्स, फिर पुरुषोत्तम पेंटर और सबसे कोने में सचदेव घड़ी सुधारक। और उस लाइन में राजू चाय-समोसेवाला, मेहँदी साइकिल स्टोर, पप्पू ज्वैलर्स, अलाबख्श टेलर्स, नेता साइकिल रिपेयरिंग, मज़ीद टेलर्स, सुरेन्द्र इलेक्ट्रिकल्स और फिर शर्मा रेडियो सेंटर। यह बाज़ार मेन रोड से थोड़ा हटके पुरानी सब्ज़ीमण्डी से लगा हुआ था।

बाबूजी के साथ साइकिल पर बैठकर हर दूसरे-तीसरे दिन मेरा इस बाज़ार में आना होता। मज़ीद चच्चा की टेलरिंगवाली गुमटी हमारा ठिकाना थी। यहाँ उनकी पैरवाली सिलाई मशीन के अलावा कटिंग और प्रेस करनेवाला लकड़ी का एक पटा था जिस पर मैल खाया, मोटा खाकी कपड़ा मढ़ा हुआ था। इसके अलावा एक छोटा बैंच और एक स्टूल था। बाबूजी अकसर मज़ीद चच्चा की दुकान पर आते। कंस्ट्रक्शन

चित्रः जोएल गिल

साइट से लौटते वक्त बाबूजी के लिए बाज़ार आने का मतलब होता था – मज़ीद चच्चा की दुकान पर दो-तीन घण्टे की बैठक। घर के लिए जो भी किराना या सब्ज़ी लेनी होती, बाबूजी यहीं गुमटी में रख देते और लौटते समय उठा ले आते। कभी पड़ोस का कोई जान-पहचानवाला दिख जाता तो उसी के हाथ सामान घर भिजवा देते। घर पूछने पर वह बताता कि बाबूजी मज़ीद टेलर के यहाँ बैठे हैं।

ज़्यादातर मैं उनके साथ होता। मज़ीद चच्चा की गुमटी की बैंच पर बैठकर मैं आसपास की दुकानों का कार्य-व्यापार देखता रहता। शेख की टॉर्च और ताले सुधारनेवाली दुकान मुझे बहुत लुभाती और तिलस्मी लगती। वह मज़ीद चच्चा की गुमटी के ठीक सामने थी। वहाँ दिनभर काम चलता। नई-नई चाबियाँ बनाई जातीं। घिस-घिस के उन्हें परफेक्ट किया जाता और टॉर्च की टेस्टिंग होती। मैं बैठे-बैठे सोचा करता कि एक दिन ज़रूर देखूँगा कि वहाँ हर ताले की चाबी कैसे बन जाती है!

हमारे घर में बाबूजी, मेरे और गुड़िया के कपड़े मज़ीद चच्चा ही सिलते। बड़ी बहनों की अपनी पसन्दीदा सिन्धन भाभियाँ थीं जो पास ही के मुहल्ले में सिलाई करती थीं। देर रात तक उनके घरों से सिलाई मशीन की खट-खट सुनाई पड़ती रहती। बड़े भाई साब रेडीमेड लेते थे। हमारे पुराने कपड़ों की मरम्मत वगैरह का काम भी मज़ीद चच्चा के यहाँ ही होता।

मज़ीद टेलर्स की गुमटी से दो-तीन दुकान दूर अलाबख्श टेलर की दुकान थी। अलाबख्श कोई सत्तर की उमर के हो चले थे। आँखें कमज़ोर थीं, सो मोटा चश्मा नाक पर चढ़ा रहता। मैं उन्हें हर वक्त काम करते ही देखता। उन्हें बटन टाँकते हुए देखना मुझे बहुत अच्छा लगता। वे कपड़े को चश्मे के एकदम पास लाकर बड़ी फुर्ती से बटन टाँकते। कई बार तो लगता कि सुई अब लगी उनकी नाक में। पर जितनी फुर्ती, उतना ही सलीका। एक के बाद एक वे धड़ाधड़ बटन टाँकते जाते। दोपहर के दो बजे बाकायदा नमाज़ पढ़ने मस्जिद जाते। इतवार के हाट में देहात से आनेवाले लोग अपने छोटे-मोटे काम अल्लाबख्श के यहाँ ही कराते। शायद इसलिए कि उनके यहाँ काम सीखने के लिए पास के अमहा गाँव के दो लड़के आते थे। इन दो कारीगरों के अलावा उनके एक साहबज़ादे भी दुकान पर बैठते थे, लेकिन वे ज़्यादातर नदारद रहते। जब कभी बाबूजी के साथ उनकी दुकान पर जाना होता तो बातों ही बातों में अलाबख्श यह दुखड़ा ज़रूर रोते कि लड़के बड़े हो गए हैं पर किसी काम के नहीं। काम-धाम में ज़रा मन नहीं लगाते। कहाँ तक घर-गिरस्थी की गाड़ी अकेले खींचूँ!

(शेष भाग पेज 38 पर)

किस मिट्टी में पनपती हैं खुशियाँ

दिलीप चिंचालकर

अगहन के आखिरी दिन थे। हवा में खुनक आ गई थी। झुटपुटा हो चला था और मैं शाम की सैर करने निकला था। तेज़ कदमों से चलते हुए मैं मन ही मन किसी विचार को टप्पे खिला रहा था। यह मेरा शगल है। कुछ लिखने से पहले उस बात को मैं इसी तरह ठोंकता-बजाता हूँ। रास्ते में एक मोड़ पर झाड़ियों के पीछे एक नलका है। उधर से पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी। कोई नहा रहा था। मैं आगे बढ़ गया।

पन्द्रह मिनट बाद मैं लौटकर उसी मोड़ पर आया। पानी में छपछपाने की आवाज़ अभी भी आ रही थी। इस मौसम में ठण्डे पानी से नहाना...वह भी शाम ढले नीम उजाले में? मुझे कँपकँपी छूट गई। उधर वह भला आदमी नर्मदाष्टक का पाठ कर रहा था। इस बार मैं वहीं खड़ा रह गया। मुझे ठण्ड बिलकुल अच्छी नहीं लगती। जाड़े के महीनों में मैं सारा दिन बगीचे की धूप में बिताता हूँ और सूरज डूबने के बाद गर्म पानी की थैली थामे रहता हूँ। परन्तु उस अजनबी का यूँ नहाना मुझे लुभा रहा था। कितना प्रसन्न लग रहा था वह।

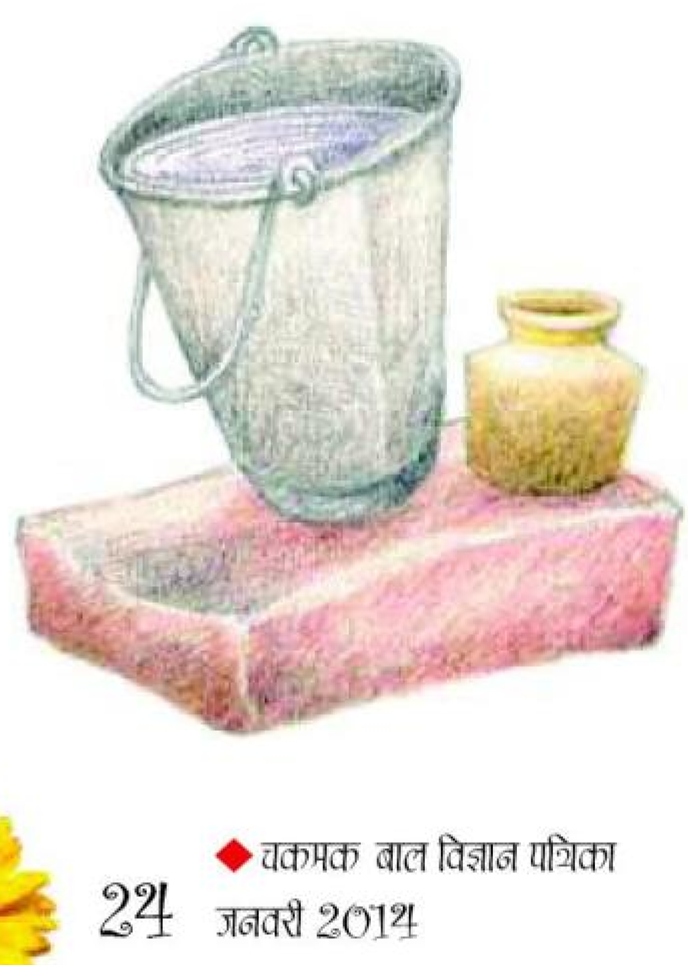

घर लौटने के बाद मन होने लगा था कि उसी समय ठण्डे पानी से नहाऊँ। किसी तरह खुद को ज़ब्त कर पाया था। दूसरे दिन सुबह मैंने नल के ताज़ा पानी से बालटी भरकर रख ली। सूरज के बाँस भर ऊँचा चढ़ आने के बाद मैं नर्मदाजी के ठण्डे पानी से नहाया। थोड़े डर और बड़ी उत्सुकता के साथ। थोड़े उबटन से शरीर को रगड़ा और एक के बाद एक लोटा पानी शरीर पर उडेलता गया। खूब मज़ा आया। मैं कई बार आनन्द से वाह-वाह कह उठा। मेरी ठण्ड गायब हो गई और मैं खूब प्रसन्न हो गया। बगीचे वाले उस भले मानुस से भी अधिक। चार सप्ताह से ऊपर हो गए हैं मुझे ठण्डे पानी से नहाते हुए।

पिछले कुछ दिनों से सैर वाले रास्ते के उसी मोड़ पर आकर मन में एक बात डोलने लगती है। अँग्रेज़ी की वह कहावत बिलकुल ठीक है – बेस्ट थिंग्ज़ इन लाइफ आर फ्री। यानी जीवन की सबसे अच्छी बातें मुफ्त होती हैं। इसे शायद यूँ भी कह सकते हैं कि उनका कोई मूल्य नहीं चुकाना पड़ता या वे अनमोल होती हैं। ये किसी और की कीमत पर नहीं होतीं और सदा खुशियाँ ही बाँटती हैं।

"अनमोल" शब्द के कारण कहावत तनिक दार्शनिक और भारी लग सकती है। मगर यह बात बड़ी हलकी-फुलकी और आनन्द देने वाली है। मैं अपनी कुछ देखी, कुछ अनुभव की हुई बातें याद करने लगा। जैसे –

तारों भरा आसमान

बिजली गुल हो जाने के बाद घुप्प अन्धेरे में प्रकट होने वाला तारों से भरा आसमान। मैं हर वर्ष जाड़ों में देहात जाता हूँ। वहाँ कृष्णपक्ष की रात में नौ बजे के बाद अन्धेरा छा जाता है। मेरा बिस्तर गढ़ी की छत पर लगता है, खुले आसमान के नीचे। तब वहाँ होते हैं मैं और तारे। हज़ारों-हज़ार तारे। रोज़ के मिलनेवाले मृग, सप्तर्षि। शर्मिष्ठा, ध्रुव भी उनमें मिलकर अपनी पहचान खो देते हैं। साथ में होती हैं उल्लू और सियार की इक्का-दुक्का आवाज़ें। हर बार रोमांचित हो जाता हूँ। तब समझ में आने लगता है कि मैं (मनुष्य) कितना मामूली हूँ और ब्रह्माण्ड कितना विशाल। उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। इस आत्मसमर्पण में बड़ी शान्ति है।

सुबह का होना

स्याह रात का चमकदार दिन में बदलना। तारों का एक-एक कर बुझते जाना। पेड़ों का काले से हरे में बदलना। आकाश का गुलाबी, पीला और फिर नीला होना। रात को झाड़ियों में सो रही मुनिया का चहचहाकर बाहर निकलना। फुनगी पर बैठी बुलबुल का मोहल्ले को सुप्रभात कहना। कहीं दूर परले टोले में एक मुर्गा बाँग देता है। इधर बाड़े में गाय के गले में बँधी घण्टी टिनटिन बज उठती है। जब मैं इस तरह दिन को जन्म लेता और बड़ा होता देख लेता हूँ तो बाद में वह कितना ही गर्म या विकट क्यों न हो, मैं उसे सहन कर लेता हूँ।

नदी का बहना

मैं उसमें पैर डुबोए किनारे पर बैठे-बैठे उसे देखता रहूँ। उसके बहते पानी में उठती छोटी-छोटी लहरें और बुलबुले मेरे मन में पहले से उछाल मार रही बातों को धो देते हैं। पानी जितना साफ हो, सूरज की किरणें उतनी अधिक गहराई तक उसे रोशन करती हैं। उसमें पड़े पत्थर, पत्थरों पर जमी काई दिखाई देती है। कभी मछलियाँ, कभी कछुए दिखाई दे जाते हैं। बहता पानी मुझे दूर जंगलों और पहाड़ों में ले जाता है। खेत-बगीचों में, किसी घाट पर जहाँ महिलाएँ पानी भर रही हैं – कपड़े धो रही हैं। पेड़ों की छाँह से ढँका कोई कुण्ड जिसमें मगरमच्छ हैं। मैं अपना आसपास भूलकर वहीं पहुँचा होता हूँ।

इस तरह की पूरी बारह बातों की सूची मैंने बना ली है। इनमें बगीचे में काम करना और झाड़ू से सफाई भी शामिल है। मुझे भरोसा हो गया है कि खुशियों की क्यारी मन के अन्दर है। हमें उसकी गुड़ाई भर करते रहना है। चक मक

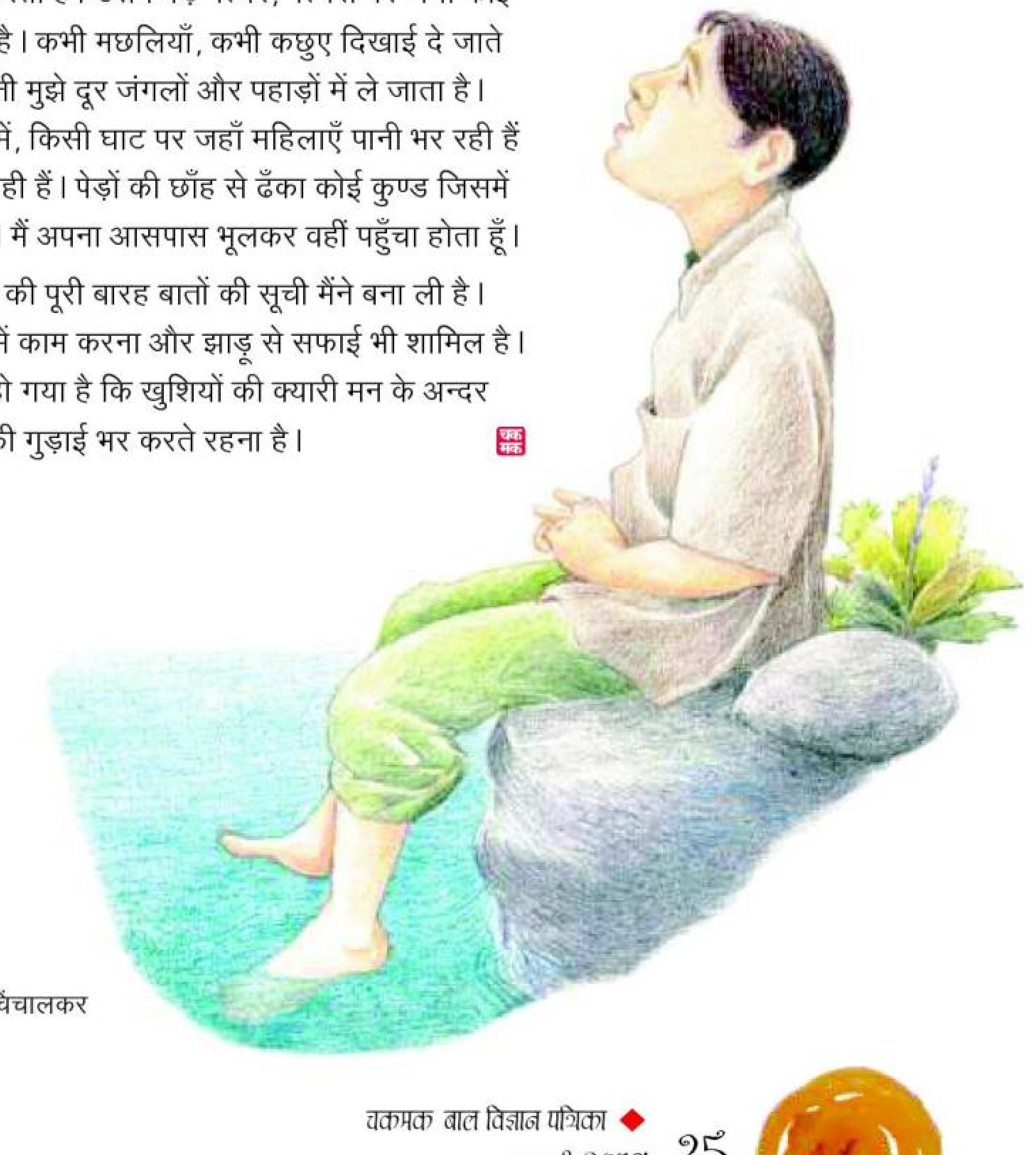

चित्रः दिलीप चिंचालकर

वरना...

चित्रकथा - पल्लवी सिंघल

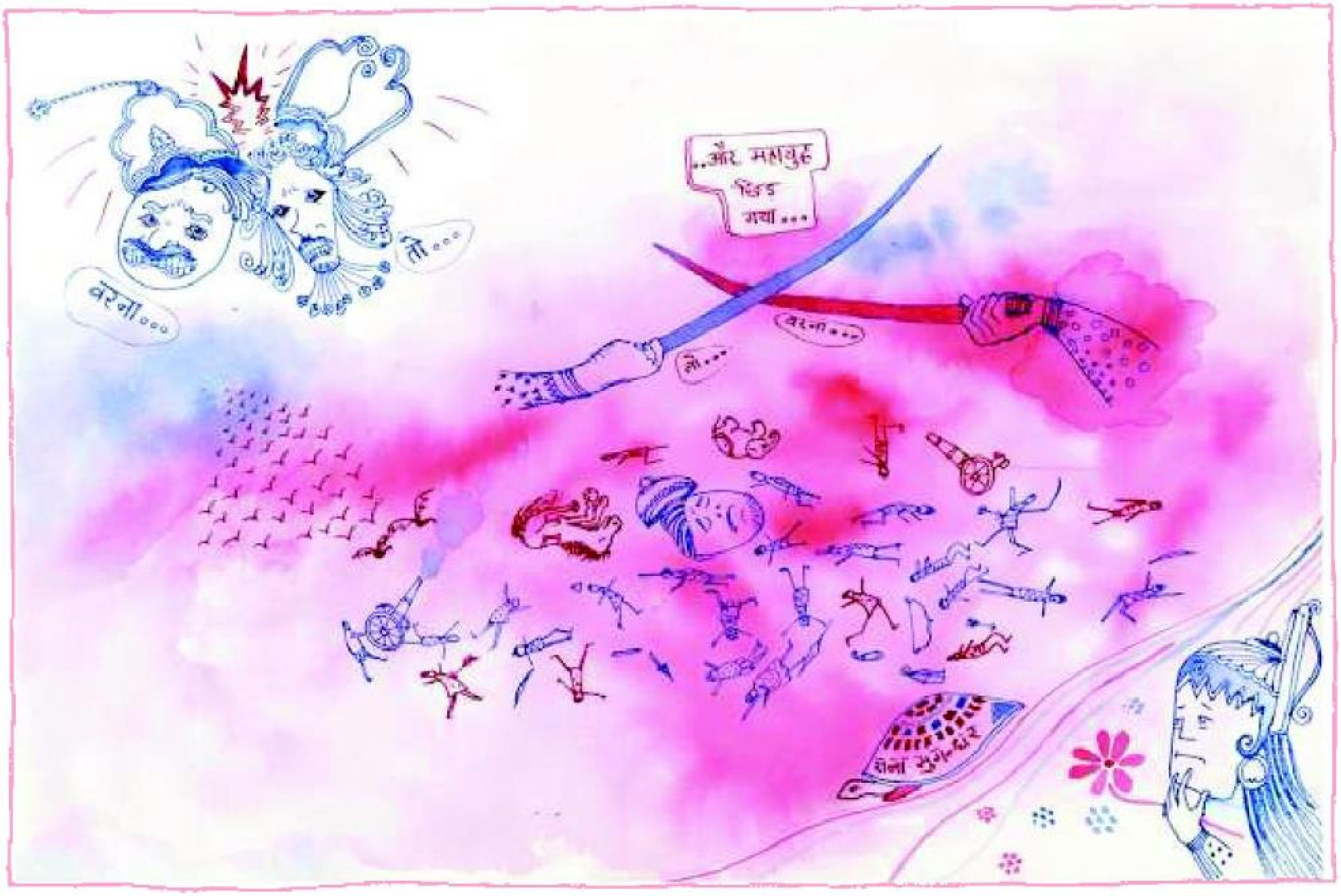
वरना...
तो...
...और महायुद्ध छिड़ गया...
वरना...
तो...

यह सब क्या किया? क्यूँ किया?!! क्या बातचीत नहीं हो सकती?

तुम्हारे कहने का क्या मतलब था कि मुझे नीला हीरा भेजो कबूतर के अण्डे के बराबर...
वरना...
अरे! मेरा मतलब था- वरना कोई और भी चलेगा, मुझे हीरे बहुत पसन्द हैं!!
तुमने क्यूं कहा कि ऐसा हीरा नहीं है और अगर होता..
तो...
इसका मतलब तो आसान था! ऐसा हीरा नहीं है, अगर होता.. तो हम खुशी से भेज देते!!!
हा हा..
ओफ्फो!
हम बेवकूफ निकले!!

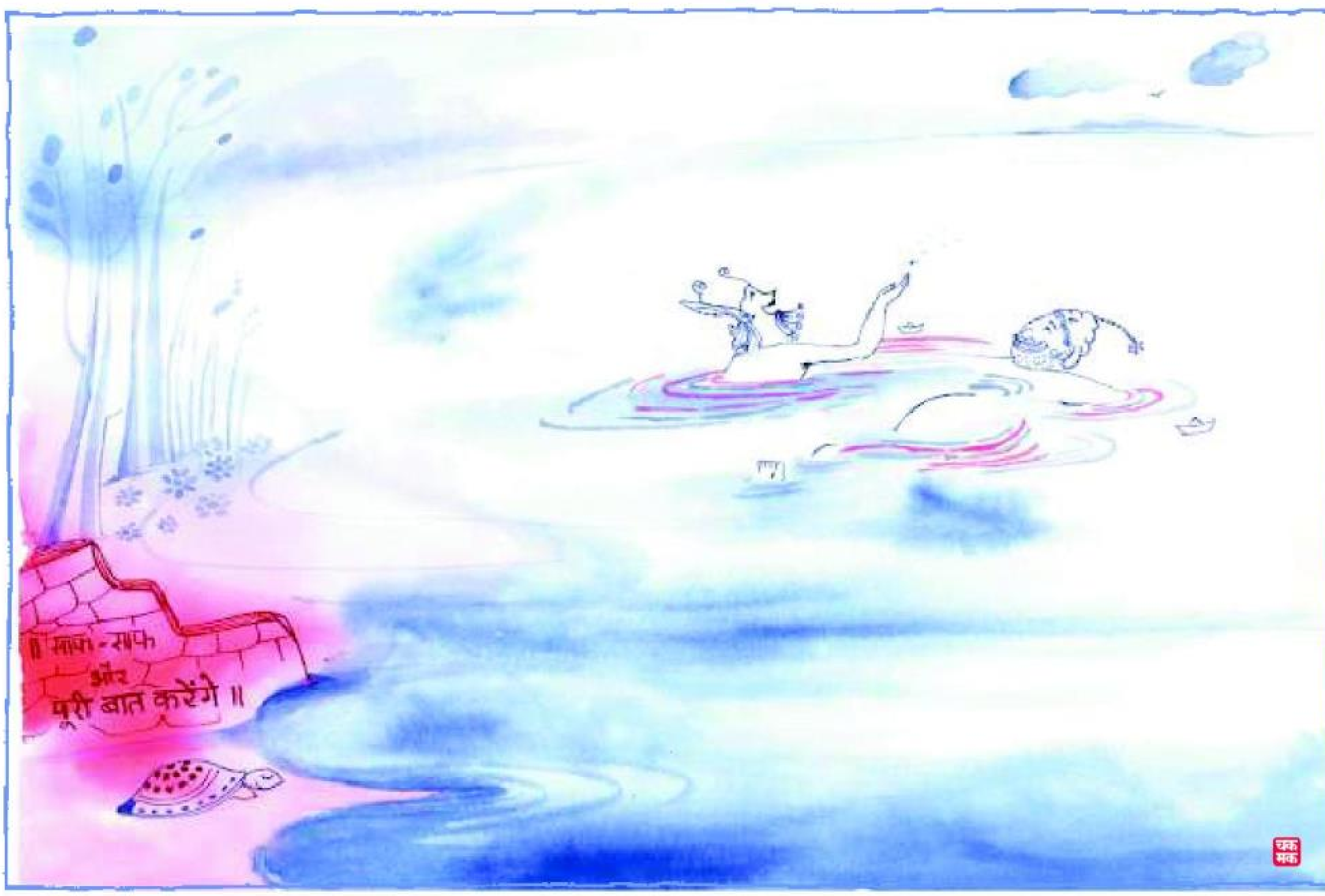
॥ साफ-साफ और पूरी बात करेंगे ॥

आर्य देसाई, आठवीं

कार्तिक मोहन, नवीं

बोली रंगोली

श्लोक, सातवीं

तनीशा वर्मा, चौथी

सौम्या भारती, चौथी

करिश्मा, आठवीं

विधि, दिव्या और आर्यन, पाँचवीं

देवाशीष, भोपाल

आस्था, छठी

उमंग, छठी

आशिदा, सातवीं

पल्लवी रानी, ग्यारहवीं

सार्थक राज, छठी

प्राची, आठवीं

खुशी, आठवीं

आरुषि, छठी

रेखा कुमारी, नवीं

राई पाटिल, पहली

सौम्या

शुभांगनी, आठवीं

समयन, चौथी

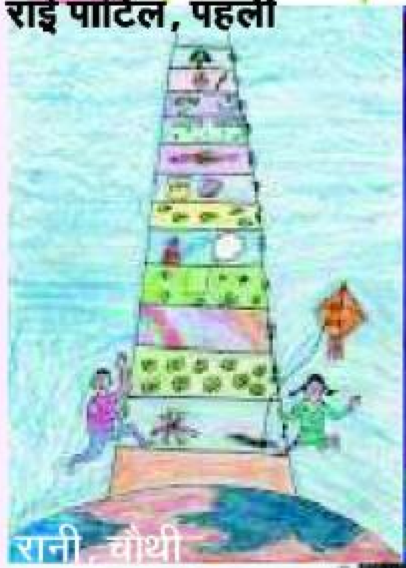
रानी, चौथी

दिव्यांशी, पाँचवीं

रंजीत कुमार, बारहवीं

कादम्बिनी, ग्यारहवीं

नेहा, नवीं

विद्या, सातवीं

दीपासना राज, छठी

आयुषि, आठवीं

वसुन्धरा, आठवीं

शेज़ारी

मराठी भाषा में शेज़ारी का मतलब होता है – पड़ोस।

इस कॉलम में तुम मराठी साहित्य की रचनाएँ पढ़ सकोगे। यूनीक फीचर्स की मदद से यह कॉलम सम्भव हुआ है। यूनीक फीचर्स बड़ों व बच्चों के लिए साहित्य तथा अन्य सामाजिक मुद्दों पर पत्रिकाएँ तथा किताबें प्रकाशित करती है।

मोर

डॉ. अनिल अवचट

अनुवाद
अलकनन्दा साने

दोपहर के दो बजे, मूर्तिजापुर स्टेशन पर उतरा तो तेज़ गर्मी थी। महाराष्ट्र का "वह्याड" इलाका और अप्रैल का महीना। भरी दोपहर की तेज़ धूप में मैं तिड़केजी के बंगले पर पहुँचा तो कुछ राहत मिली। यहाँ पर तिड़केजी के सन्तरों के कई बगीचे हैं। उनके बेटे की साहित्य में रुचि है और वह हर साल अपनी माँ की याद में यहाँ एक व्याख्यानमाला का आयोजन करता है। इस साल मैं एक व्याख्यान के लिए आमंत्रित था। व्याख्यान शाम सात बजे था, पर दूसरी कोई गाड़ी ना होने के कारण मुझे इतनी जल्दी आना पड़ा। कोई दूसरा मौका होता तो आते ही मैं इस इलाके की छानबीन में लग जाता। लेकिन पिछले सात-आठ दिनों से ऐसी ही गर्मी में मैं नागपुर के दौरे पर था। बहुत भागमभाग हो चुकी थी। इसलिए बड़े प्रेम से परोसे वह्याडी भोजन के बाद तिड़केजी ने जैसे ही आराम करने की सलाह दी, मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया।

तिड़केजी मुझे पहली मंज़िल पर ले गए जहाँ एक बड़ा-सा हॉल था। हॉल से जुड़ी बालकनी थी। बालकनी में लगे काँच के दरवाज़े खुले थे। इससे हॉल काफी खुला-खुला लग रहा था। हॉल और बालकनी के बीच में बाँस का एक झूला टँगा हुआ था। उस पर एक मुलायम-सा कुशन था। मुझे वह इतना पसन्द आया कि पलंग पर लेटने की बजाय मैं झूले पर ही बैठ गया। बालकनी से दूर तक फैला सन्तरे का बगीचा दिख रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे सन्तरों का गहरा हरा रंग क्षितिज तक पहुँच गया हो। वह्याड की भयानक गर्मी में नज़रों ने कुछ ठण्डक महसूस की। नागपुर दौरे की सारी थकान पलभर में उतर गई।

नामान्तरण आन्दोलन में पन्द्रह से पच्चीस वर्ष की उम्र के पाँच लड़के मारे गए थे। हम उनके घरों में संवेदना प्रकट करने गए थे। पर किस के प्रति संवेदना व्यक्त करें यह समझ से परे था। उन लड़कों की लाशें तक परिजनों को नहीं दी गई थीं। पुलिस ने खुद ही अन्तिम संस्कार कर दिया। खबर मिलते ही लोग शमशान पहुँचे, पर उन्हें अन्दर नहीं जाने दिया गया। सामने बेटों की चिताएँ थीं। एक माँ यह सब देखकर अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठी। कपड़े फाड़ते हुए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। परिवार पर आसमान टूट पड़ा। हम इन लोगों से मिले। और कुछ तो कर नहीं सकते थे, सो उन्हें कुछ पैसे दिए और लौट आए।

मैं जब भी दौरे पर होता हूँ ज़्यादातर किसी कार्यकर्ता के घर पर रुकना ही ठीक समझता हूँ। यहाँ मूर्तिजापुर में कोई कार्यकर्ता नहीं होने के कारण मुझे तिड़केजी के बंगले में आना पड़ा। बंगले की शान्ति, शीतलता और दूर तक फैला सन्तरों का बगीचा सब कुछ बहुत ही मनमोहक था। मैंने झूले के पास एक स्टूल खिसका लिया और उस पर पैर रखकर हलके-हलके झूलने लगा। हाथ में मेरी मनपसन्द किताब थी।

अचानक कुछ आहट-सी महसूस हुई। देखा तो बालकनी की मुँडेर पर

एक मोर बैठा था। चमकदार नीले रंगवाला मोर। उसने अपने पंख फैला लिए थे और वह बहुत सुन्दर लग रहा था। मात्र दस-बारह फीट की दूरी पर मेरे सामने अद्‌भुत नज़ारा था। लग रहा था मानो मैं कोई सपना देख रहा हूँ। मैंने इससे पहले कभी भी इतनी स्वतंत्रता से विचरण करते मोर को नहीं देखा था। चिड़ियाघर के गन्दे और छोटे पिंजरे का मोर दीन-हीन और फीका-सा दिखता है। और यहाँ नीले आसमान, हरे बगीचे की पार्श्वभूमि में चमचमाता नीला-हरा मोर।

मोर के साथ मेरा एक अलग ही रिश्ता है। मुझे एक ही विषय पर महीनों तक अलग-अलग चित्र बनाने का शौक है। दो-तीन बरस पहले मैंने एक दिन यूँ ही एक मोर का चित्र बनाया था। फिर तो जैसे मुझे इसका भूत सवार हो गया। मोर के फैले पंखों में मैंने अलग-अलग आकृतियाँ बनाईं। डेढ़-दो साल तक यही चलता रहा। कुछ भी बनाने बैठता तो मोर ही बन जाता। बावजूद इसके कि मैंने प्राकृतिक वातावरण में मोर को कभी नहीं देखा था। यूँ तो मोर के पंख काफी आकर्षक माने जाते हैं पर मुझे तो सामने खड़े मोर की गर्दन ही ज़्यादा सुन्दर लगी।

वह अपनी गर्दन को किसी भी दिशा में मोड़ सकता था और वह भी गोलाकार। उसकी गर्दन में अँग्रेज़ी का "एस" आसानी से देखा जा सकता था। ज़मीन से चोंच में कुछ उठाने पर एक आकार तो चलते समय शरीर पर सारा भार डालकर चलता तो दूसरा ही आकार। गर्दन के इस तरह अलग-अलग तरीके से हिलने पर मोर का फिरोज़ी-नीला रंग मनोहारी छटा बिखेरता था। यदि वह मोर उस दिन नहीं दिखता तो मुझे कभी पता ही नहीं चल पाता कि हरे और नीले रंग में कितनी विविध छटाएँ छिपी हैं। चोंच के पीछे से सिर पर कलगी निकली हुई थी। सिर की कठोर त्वचा से निकली नाज़ुक तन्तु की तरह महीन काली रेखाएँ। उनके सिरे पर उतने ही नाज़ुक नीले रंग के छोटे-छोटे तिकोने पंख और उनमें भी नीले रंग की विविध छटाएँ।

पंखों का आकार मोर के शरीर के बाकी हिस्सों में भी दिख रहा था। गर्दन जहाँ शुरू हो रही थी उस किनारे पर पीले-तम्बाकू रंग में डिज़ाइन बना था। उसमें भी पंखों के आकार बने थे। एक-दूसरे से अलग हो रही गोलाकार रेखाएँ और उन्हें जोड़नेवाली एक और गोलाकार रेखा। पीठ से पेट तक ऐसे अनेक आकार बने हुए थे। पंखों में तो अनगिनत आकार थे, जो सिरे पर तिकोने हो जाते थे। रंगों की बेमिसाल विविध छटाओं का खज़ाना था वहाँ। भूरे रंग पर जैसे फिरोज़ी "आँखें" चमक रही थीं। शरीर के भार से पंखों का भार ज़्यादा था लेकिन मोर उसे सम्हालते हुए बड़ी आसानी से अपने सुडौल कदम रख रहा था मानो रैम्प पर चल रहा हो।

तभी उसने अपनी चोंच में कुछ उठाया। गर्दन सीधी की तब पता चला कि वह कितनी लम्बी थी। अब उसकी गोलाई भी नहीं दिख रही थी, बल्कि लग रहा था जैसे ऊपर की तरफ संकरा होता गया कोई खम्भा है। गले से नीचे की ओर वह लगातार सिकुड़ रहा था। मैं तो जैसे भूल ही गया था कि इतनी सुन्दर, चमकीली गर्दन के भीतर माँसपेशियाँ भी होंगी, अन्न नलिका भी होगी।

यदि वह मोर उस दिन नहीं दिखता तो मुझे पता ही नहीं चल पाता कि हरे और नीले रंग में कितनी विविध छटाएँ छिपी हैं।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

वह अत्यन्त कर्कश आवाज़ में चिल्लाया "क्वेक"। शान्त वातावरण में उस कर्कश आवाज़ से मैं चौंक गया।

अचानक वह मुँडेर से नीचे उतरा। चोंच को ज़मीन से छूता हुआ वह खाने के लिए कुछ तलाश रहा था। उसे मेरे होने का पता ना चले, इसलिए मैं बिना हिले-डुले एकदम चुप बैठा उसकी गतिविधियाँ देख रहा था। तभी उसने अपने पंखों को ऊँचा किया और वहाँ विष्ठा कर दी। तीन-चार और जगह उसने यही क्रिया दोहराई। अपने कुरूप पैर विष्ठा पर रखते हुए वह इधर-उधर घूमता रहा। वहाँ काले-पीले रंग का कुछ कीचड़ जैसा हो गया था। वह अब आगे आकर मेरे झूले के पास घूमने लगा। उसे ज़रा-सा भी डर या हिचकिचाहट नहीं थी। अभी तक वह मुझे शर्मीला लग रहा था और अच्छा भी, लेकिन अब मेरी उसकी ओर देखने की इच्छा खत्म हो गई थी। मैं फिर से अपनी किताब पढ़ने लगा।

अब मोर मेरे पैरों के पास आ गया था। उसने अपनी चोंच ऊपर उठाई और पूरी तरह खोल दी। उसकी चोंच के अन्दर शकरपारे के आकार का काला गड्ढा था। वह अत्यन्त कर्कश आवाज़ में चिल्लाया "क्वेक"। शान्त वातावरण में उस कर्कश आवाज़ से मैं चौंक गया। उसने चार-पाँच बार वैसी ही आवाज़ निकाली। उसकी खुली चोंच का दृश्य और उसमें से निकली कर्कश आवाज़ से मैं सिहर गया।

अब उसे भगाना चाहिए यह सोचकर मैंने थोड़ा हाथ उठाकर "शुक-शुक" बोला। एक पल के लिए वह पीछे हटा और अगले ही क्षण मुझ पर झपट पड़ा। उसकी सफेद चोंच, सिर का पिछला सफेद हिस्सा और उस पर बनी काली आँखें देखकर मुझे खोपड़ी का कंकाल या भूत का मुखौटा याद आ गया। मैं उसे भगाने की जितनी कोशिश करता वह उतना ही आक्रामक होता चला गया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि करूँ क्या। तभी चाय की ट्रे लेकर तिड़केजी ऊपर आए। जैसे ही उन्होंने मोर को मारने का अभिनय किया वह उड़कर मुँडेर पर जा बैठा और फिर वहाँ से नीचे चला गया। तिड़केजी कहने लगे, "हमारा यह मोर बहुत तेज़-तर्रार है। किसी नए व्यक्ति को देखता है तो चोंच से लहुलुहान कर देता है।" चाय का कप हाथ में थमाते हुए वे पूछने लगे, "आराम हुआ कि नहीं? नींद आई ना अच्छे से?"

मैं क्या कहता। मैंने धीरे-से मुस्कराते हुए "हाँ" में गर्दन हिलाई और मन ही मन कहा, "नींद कहाँ? मैं तो 'सौन्दर्य' का ज़बर्दस्त अनुभव ले रहा था।"

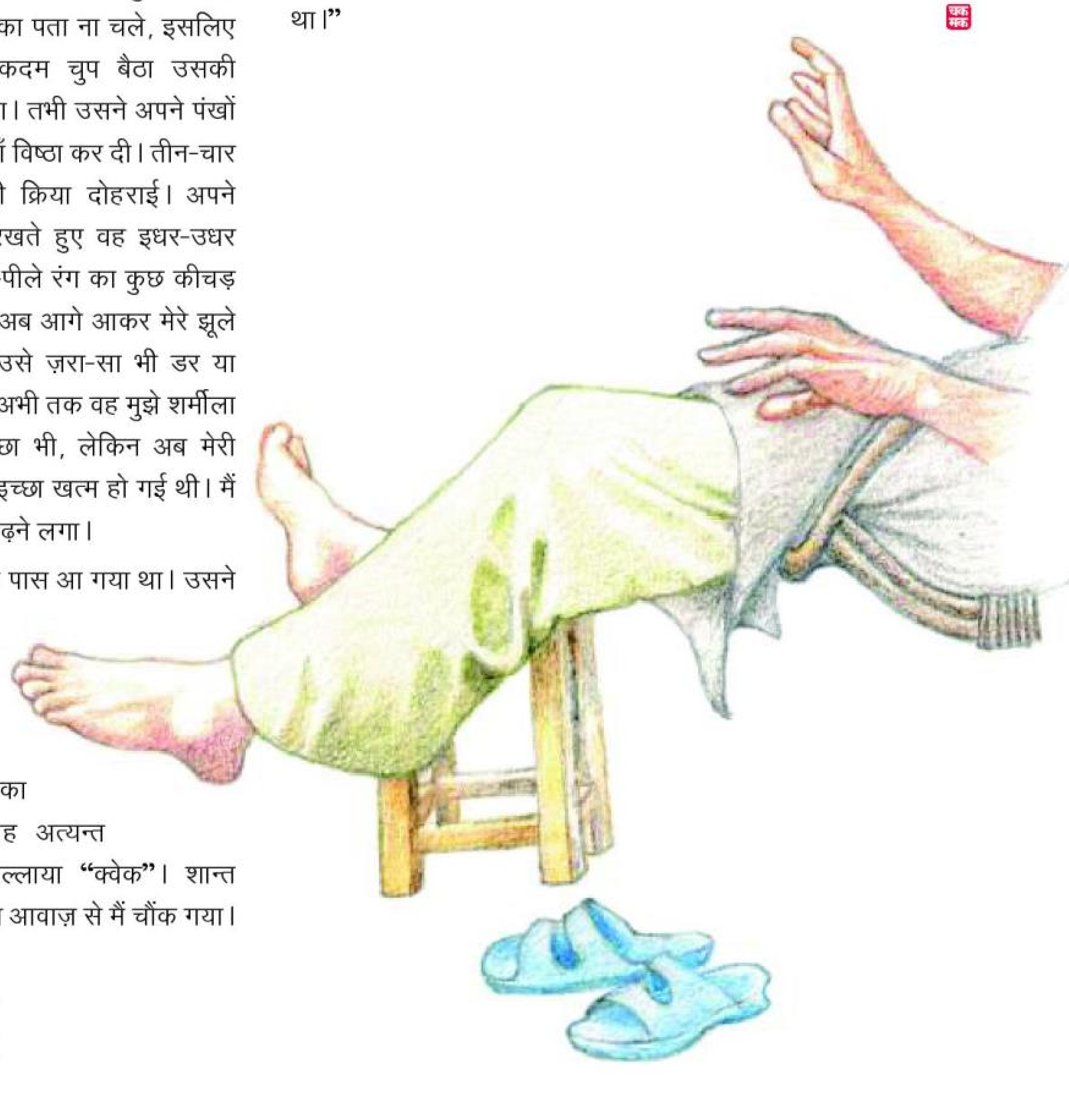

जुड़वाँ

विवेक रानडे

वे दोनों जुड़वाँ थे। घर में आए तो जैसे माँ की कोख में सोए थे। तनूका की स्कूल बस शुरू ही होने वाली थी कि दोनों ने घर में प्रवेश किया। जुड़वाँ थे तो उनकी आदतें, दिखना और स्वभाव मानो जुड़वाँ ही था। पर ध्यान से देखो तो वे एक-दूसरे के उलट थे। एक का सर बाएँ तो दूसरे का दाहिने झुका था। वे दोनों हमेशा दाहिने और बाएँ ही खड़े रहते। दोनों का सर एक-दूसरे से हमेशा जुड़ा रहता था। मानो एक-दूसरे के कान में कुछ खुसुर-फुसुर चल रही हो। इसलिए उनका नाम भी दाहिना और बायाँ पड़ गया था। वे एक-दूसरे से हर बात शेयर करते।

केवल साथ-साथ रहने और मस्ती करने को दोस्ती नहीं कहते। ये तो होड़ होती है, एक-दूसरे को बेहतर बनाने की। जैसे मैंने उन्हें देखा है। एक जब आगे निकलता, तो दूसरा उसे पीछे छोड़ देता। दोनों कभी भी साथ-साथ नहीं चलते, हर समय एक-दूसरे से आगे-पीछे चलते। कभी धीरे-धीरे तो कभी ज़ोर-ज़ोर से या कभी भाग-भागकर एक-दूसरे से जीतने की कोशिश करते। पर जैसे ही ये रेस खत्म हो जाती फिर से वे दोनों एक-दूसरे के गले मिलते और कान में खुसुर-फुसुर शुरू कर देते। किसी भी हार-जीत का इनके निजी सम्बन्धों पर कोई असर नहीं होता।

ये दोनों बिलकुल नए विचारों के थे। इनकी यह सोच इन्हें भगवान से मिलने को मजबूर नहीं करती। दोनों कभी भी मन्दिर नहीं गए। कभी मन्दिर पहुँचे भी तो बाहर ही खड़े रहे।

दूर-दराज़ के इलाकों में कीचड़ से गुज़रते हुए पहुँच जाते। जवानों के कदम से कदम मिलाकर काम करते। खिलाड़ियों के साथ उतनी ही स्फूर्ति और तेज़ी-से काम लेते। फुटबॉल के मैदान पर तो दोनों की जमकर पिटाई होती, पर न तो ये कभी थके, न कभी इनकी आँख में आँसू आए।

जैसे दोनों मन्दिर नहीं जाते, वैसे ही दोनों किसी भी घर में भीतर नहीं जाते। हाँ, पर उन घरों में ज़रूर भीतर तक पहुँच जाते जिन घरों में उन्हें तुच्छ न समझा जाता हो। उनका कहना था कि एक समय ऐसा था जब बड़े प्यार से और आदरपूर्वक भरत ने उन्हें राम के सिंहासन पर रखा था। अब आखिर यह तो समय-समय की बात है।

एक समय ऐसा भी आया जब बायाँ बीमार पड़ गया। कहीं हड़बड़ी में उसके सिर पर भारी चोट आई थी। कई दिन घर में रखने के बाद बाएँ को घरवालों ने बाय-बाय कर ही दिया। लेकिन दाहिना उसका सच्चा दोस्त था। बाएँ के साथ दाहिना भी दर-दर की ठोकरें खाने घर से निकल गया।

कई साल बीत गए। एक रोज़ दाहिने को किसी ने ट्रक के नीचे लटकता हुआ पाया। लोगों का कहना था कि ट्रक को नज़र न लगे इसलिए उसे नीचे लटकाकर रखा है। पर असल बात कुछ और थी। ट्रक के नीचे लटककर देश की गली-गली घूमकर वो अपने जिगरी दोस्त बाएँ को ढूँढ रहा था।

चक मक

महाकुम्भ का महावृत्तान्त

संजीव

लाख-लाख कहानियाँ कही-सुनी और गुनी जाती हैं। कुछ पक्की, कुछ कच्ची, कुछ झूठी, कुछ सच्ची! मगर मैं जो कहानी तुमको सुनाने जा रहा हूँ, वह झूठी नहीं सच्ची है – सौ फीसदी सच्ची! एक बात और आपने पुनर्जन्म सिर्फ सुना भर होगा, हमने उसे देखा है। है न हैरान कर देने वाली बात! यह कहानी मेरे सीनियर सहकर्मी नन्द कुमार बैनर्जी की है। बांकुड़ा ज़िले के चिरंजीव ग्राम के नन्द कुमार बैनर्जी! आप सोच में पड़ गए होंगे, कौन थे ये नन्द कुमार! कोई इतिहास पुरुष तो नहीं? सच चिरंजीव ग्राम के इतिहास पुरुष ही थे नन्द। अब आप पूछेंगे कि इतिहास पुरुष थे तो कौन-सा इतिहास रचा उन्होंने, कौन-सी लड़ाई लड़ी जीती या हारी उन्होंने। गाँव वाले बताएँगे महाकुम्भ की लड़ाई!

तुम हँस दोगे तो वे तुम्हारी नादानी पर हँसेंगे। तुम्हें पता है बारह वर्ष बाद गंगा-यमुना के संगम प्रयाग यानी इलाहाबाद में कुम्भ होता है। कुम्भ नहीं महाकुम्भ! उन दिनों संगम में स्नान करने के लिए दूर-दूर से लाखों धर्म प्राण हिन्दू आते हैं। अलग-अलग अखाड़ों से लाखों साधु-सन्यासी भी। कहने को ये साधु माया-मोह, ईर्ष्या, द्वेष से दूर होते हैं, परम त्यागी लेकिन वास्तव में ऐसा होता नहीं। इन साधुओं के अलग-अलग गिरोह होते हैं जिन्हें अखाड़ा कहा जाता है। संगम में कौन पहले स्नान कर पुण्य लाभ करेगा इस बात को लेकर युद्ध होता है।

तुम ऊबकर कहोगे, यह सब हम जानते हैं, इसमें नन्द कुमार की कहानी कहाँ से जुड़ती है।

गाँव वाले बताएँगे, जुड़ती है। वो ऐसे कि उस बार आज़ादी मिलने के बाद का पहला महाकुम्भ था और नन्दकुमार भी अपनी पत्नी और गाँव वालों के साथ कुम्भ स्नान के लिए गए थे। महाकुम्भ के प्रथम स्नान का वह दृश्य किसी महायुद्ध से कम न था। कुछ साधु हाथी पर सवार थे, कुछ सिपाही घोड़े पर। फौज, और पुलिस के जवान? इस बीच तब के प्रधानमंत्री चाचा नेहरु का आगमन हुआ। इधर नागा सन्यासी, उधर हाथी, सबसे ऊपर प्रधानमंत्री!

ऐसा हड़बोंग मचा कि पूछो मत। कितने तो हाथियों से कुचला गए, कितने भगदड़ से कुचला गए। अपनों से बिछड़े लोगों की संख्या का तो हिसाब ही नहीं।

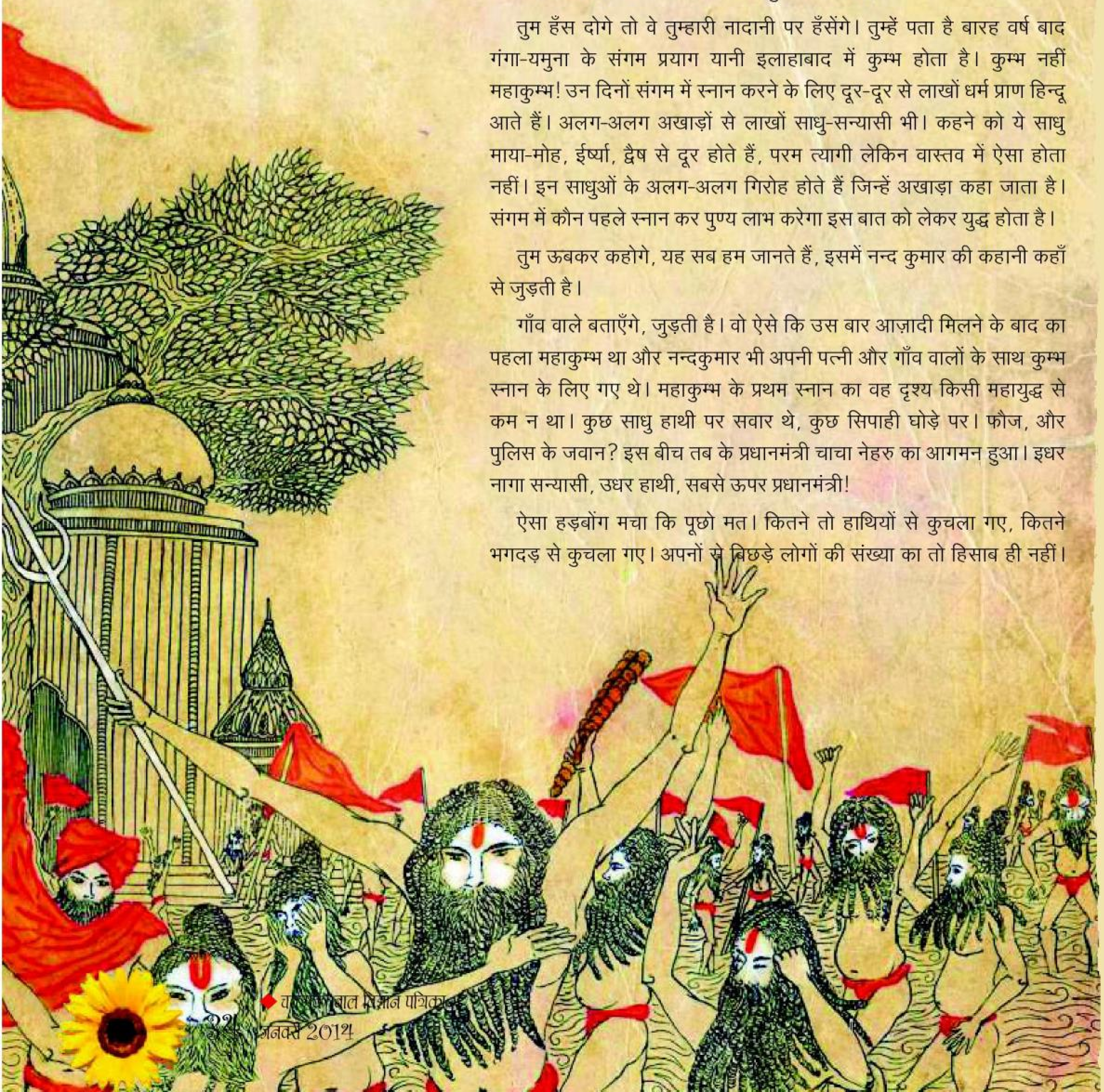

चारों तरफ रोना-बिलावना, चीख-पुकार, अफरा-तफरी का आलम। किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए।

एक जगह पर जहाँ-तहाँ से घायल और मुर्दे लाकर उलीचे जा रहे थे। सेना वहाँ खड़ी थी स्थिति को सँभालने के लिए। सेना के जवानों ने दो भाग किए थे घायलों के मलबे के – एक जो मर गए, दूसरे वे जो ज़िन्दा हैं।

एक जवान दोनों हाथ पकड़ता, दूसरा दोनों पाँव। झुलाते हुए दोनों पूछते – ज़िन्दा या मुर्दा? फिर जो जीवित होता, उसे ज़िन्दा वालों के बीच फेंकते, जो मर चुका होता, उसे मरे लोगों के बीच।

अपने नन्द कुमार भी उसी मलबे में पड़े हलके-हलके "भाँगो! भाँगो!" कहकर कराह रहे थे।

जवानों ने जब उनकी टाँगें और बाँहें झुलाते हुए पूछा, "ज़िन्दा या मुर्दा?" तो उन्होंने जान लगाकर कहा, "ज़िन्दा!" तब उनमें से एक लालची सिपाही ने धीरे-से कहा, "टैंट में जो कुछ भी है निकाल दे, नहीं तो 'मुर्दा' वाले ढेर में फेंक देंगे।"

"हाथ तो आपने पकड़ रखे हैं।" नन्द कुमार मिमियाए।

नन्द कुमार को बगल रख दिया, "निकाल पैसे।"

नन्द कुमार ने छूटते ही गुहार मचाई, "माँ काली की कसम मैं ज़िन्दा हूँ। मेरे गाँव वाले बिछड़ गए है, पत्नी भी, पैसे नहीं है मेरे पास।"

"तब हम तुम्हें मुर्दे वाले ढेर में फेंक देते हैं।" यह कहते हुए जवानों ने उन्हें दोबारा उठाना चाहा कि उन्होंने गिड़गिड़ाकर कहा, "ये सिर्फ दस रुपए हैं। सिर्फ दस रुपए। मेरा खर्चा...!" जवानों ने दस रुपए लेकर उन्हें ज़िन्दा बना दिया।

नन्द कुमार को सिपाहियों ने ज़िन्दा की सनद देकर छोड़ तो दिया लेकिन गाँव वालों के लिए वे मर चुके थे। इस निष्कर्ष पर आने के पहले उन्होंने नन्द कुमार को तलाशने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। कैम्प-कैम्प, थाना-थाना, टैंट-टैंट, हाकिम-हुक्काम, कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढा! महीने भर तक इन्तज़ार भी किया कि ज़िन्दा होंगे तो भूले-भटके रात-विरात आ जाएँगे। जब नहीं आए तो उनका अन्तिम संस्कार कर दिया गया।

तीसरे महीने आधी रात को अचानक चिरंजीव ग्राम के कुत्ते भौंकने लगे और इसके साथ ही नन्द कुमार के घर के बन्द दरवाज़े पर दस्तक हुई।

"के?" अन्दर से नन्द कुमार के बाप ने पूछा।

"आमी नन्दो (मैं नन्द)!"

फिर तो जो हुआ वह अजीब ही था।

दरवाज़ा खुलते ही भूत समझकर पत्नी, माँ और दूसरे लोग भाग चले। वे जिधर भी जाते भगदड़ मच जाती। बड़ी मुश्किल से वे अपने खानदान, और पूरे गाँव का परिचय और अपनी आपबीती बनाकर गाँव के लोगों और अपने परिवार को यकीन दिला सके कि वे नन्द कुमार बैनर्जी ही हैं।

लोगों ने लालटेन और टॉर्च की रोशनी में देखा कि भीड़ में कुचले जाकर बदन भिमंगी हो गया था, जो कभी ठीक न हो पाया। लेकिन थे वे नन्द कुमार ही।

काली मन्दिर के सामने के जिस चबूतरे पर उनका श्राद्ध भोज हुआ था, उसी पर उनके पुनर्जन्म का भोज सम्पन्न हुआ। कई-कई गाँव के लोग आए हुए थे उन्हें देखने और पुनर्जन्म का भोज खाने। पिछले महीने ही नन्द कुमार की वास्तविक मृत्यु हुई।

मैं उनके घर गया उनकी वृद्धा पत्नी से इधर-उधर की बातें होती रहीं। जो सबसे ताज्जुब की बात बताकर उन्होंने मुझे चौंका दिया वह थी–

"हालाँकि अपने इसी टेढ़े-मेढ़े दबे-पिचके पति से मेरे तीन बेटे, दो बेटियाँ हुईं। मगर मुझे आज तक यकीन नहीं रहा कि मैं पति के साथ रह रही थी, या पति के भूत के साथ!"

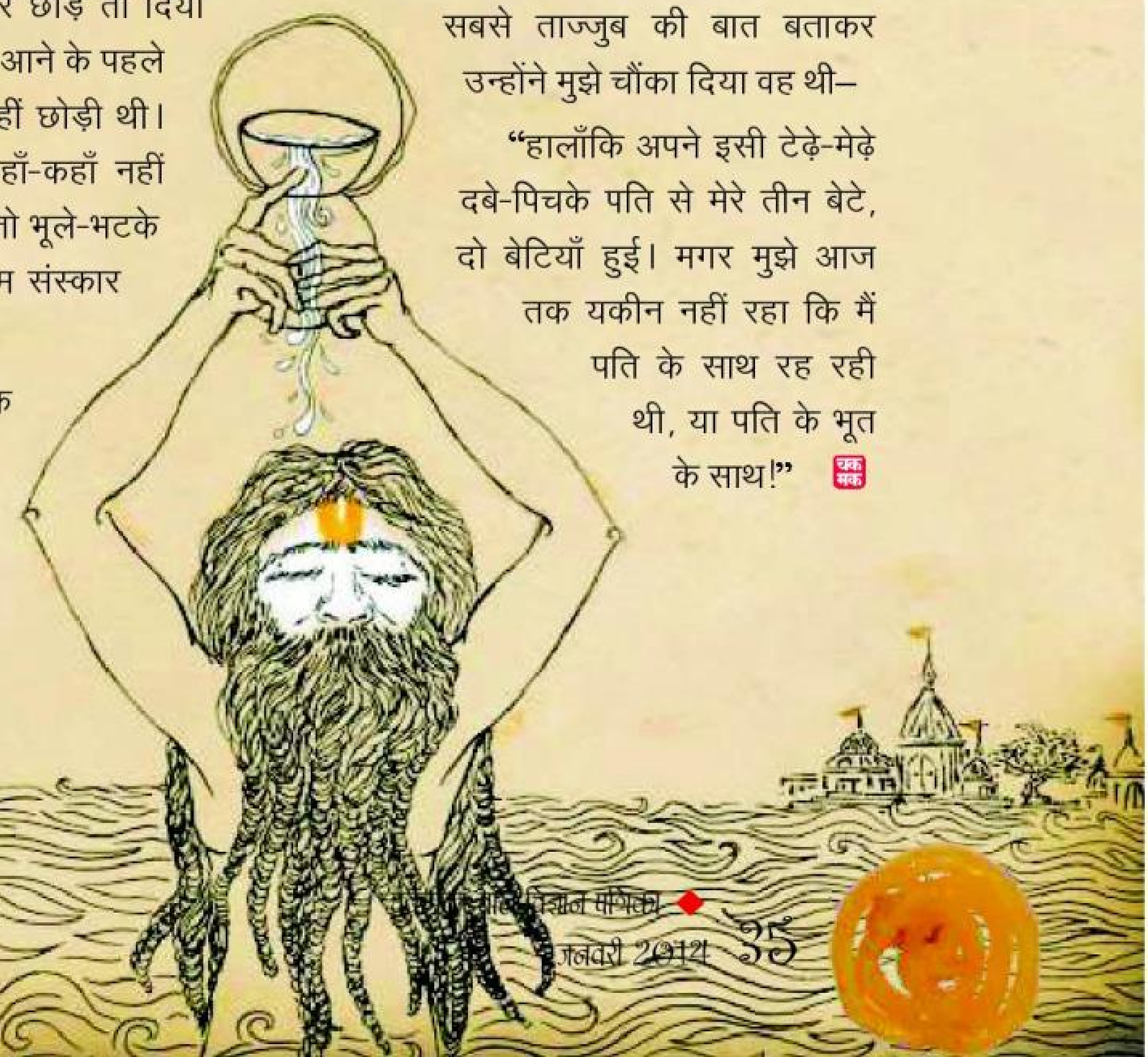

चित्रः नर्गिस शेख

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

विनोद कुमार शुक्ल

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था
व्यक्ति को मैं नहीं जानता था
हताशा को जानता था
इसलिए मैं व्यक्ति के पास गया
मैंने हाथ बढ़ाया
मेरा हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ
मुझे वह नहीं जानता था
मेरे हाथ बढ़ाने को जानता था
हम दोनों साथ चले
दोनों एक-दूसरे को नहीं जानते थे
साथ चलने को जानते थे।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

हताशा से एक व्यक्ति बैठ गया था

विनोद कुमार शुक्ल अपनी मौलिकता के साथ ही भाषा की अनगढ़ता के लिए विख्यात हैं। किन्तु इस कविता में मौलिक होने के साथ ही वे काव्य शिल्प के सिद्ध कवि की तरह भी दिखाई देते हैं।

कविता के अर्थ इतने सहज और साफ हैं कि उन्हें व्याख्या की दरकार नहीं है। सरल शब्दोंवाले वाक्य स्वयं ही अपना मर्म कह देते हैं।

"व्यक्ति को मैं नहीं जानता था, हताशा को जानता था" कहते ही वे "जानने" की हमारी उस जानी-पहचानी रूढ़ि को तोड़ देते हैं जो व्यक्ति के नाम, पते, उम्र, ओहदे या जाति से जानने को जोड़ती है। यदि हम किसी व्यक्ति को उसकी हताशा, निराशा, असहायता या उसके संकट से नहीं जानते तो हम कुछ नहीं जानते। सड़क पर घायल पड़े अपरिचित व्यक्ति को देखकर क्या हम कह सकते हैं कि उसे हम नहीं जानते? वास्तव में हम जानते हैं कि यह व्यक्ति मुसीबत में है और इसे हमारी मदद की ज़रूरत है। यह कविता मनुष्य को मनुष्य की तरह "जानने" की याद दिलाती है।

कविता लगातार "नहीं जानने" और "जानने" को बयान करती जाती है। शिल्प की इस बारीक कारीगरी को देखें –

"वह मुझे नहीं जानता था, हाथ बढ़ाने को जानता था" "हम एक-दूसरे को नहीं जानते थे, साथ-साथ चलना जानते थे" यह "नहीं जानना" और "जानना" कविता में किसी लोकगीत के स्थायी की तरह बार-बार लौटता है। गद्य में लिखी हुई किसी कविता में लिरिकल या गीतात्मकता का बोध इस खूबी के साथ हिन्दी की किस कविता में आया है, याद नहीं आ रहा।

जैसे किसी गज़ल में आखरी शेर के आखरी शब्द, श्रोताओं की ज़ुबान पर आप से आप आ जाते हैं, वैसे ही इस कविता के अन्तिम शब्द – यानी "साथ-साथ चलना" के बाद यदि कविता पाठ रोक दिया जाए तो सुनने वाले खुद वाक्य पूरा कर देंगे और कहेंगे **"जानते थे"**।

यह कविता जानना शब्द के रुढ़िग्रस्त अर्थ को पूरी तरह से बदल देती है। इस कविता की पहली दो पंक्तियों में ही कवि अपनी पूरी बात कह देता है। शेष पंक्तियाँ उसी कहे गए को और सघन, और गहरा करती हैं। कविता का सन्देश है कि – दो मनुष्यों के बीच मनुष्यता का अहसास यानी मानवीय संवेदना होना ज़रूरी है – जानकारियाँ ज़रूरी नहीं हैं।

किन्तु यह सन्देश कविता में उपदेश की तरह नहीं आता।

– नरेश सक्सेना

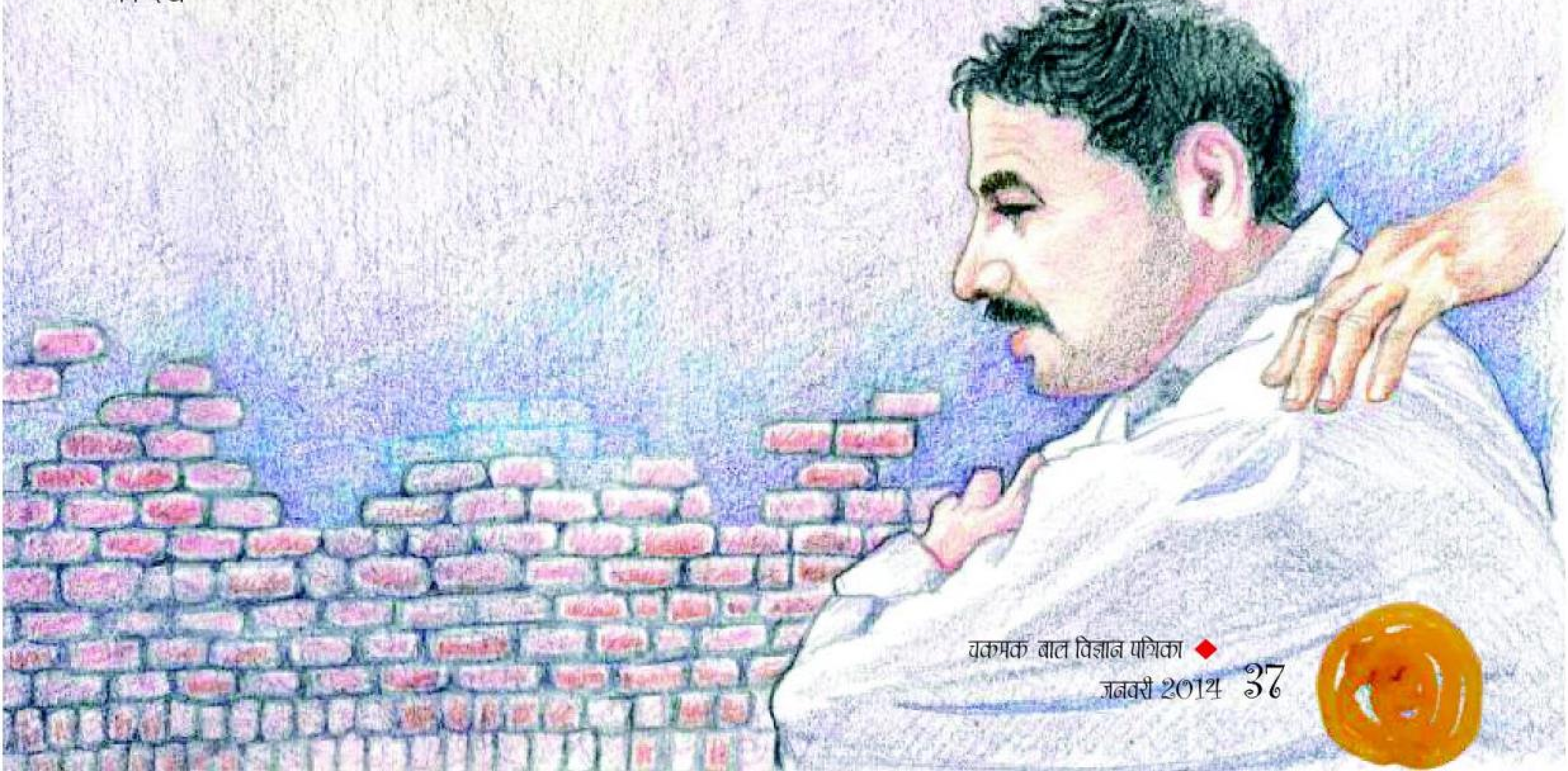

चिम्मनलाल के पायजामे

(पेज 17 का शेष भाग)

उमरिया में, चिम्मनलाल खण्डेलवाल, नगर सेठ के रुतबेवाले व्यापारी थे। कस्बे में उनकी कपड़े की बड़ी भारी दुकान थी। काँच के बड़े-बड़े शो केस, विशालकाय काउण्टर, जिस पर पूरी थान खोलकर दिखाई जा सकती थी। अन्दर भी दुकान, बाहर भी दुकान। यहीं पर पहली बार रबरवाले आदमकद पुतले आए थे, जिन्हें कपड़े पहनाकर बाहर रखा गया था। हम सब आते-जाते उन्हें देखने को रुकते। वे सैण्डो बनियान से लेकर रज़ाई और कम्बल तक रखते थे। कोट के कपड़े, सफारी सूट, साड़ियाँ, सलवार-सूट, स्वेटर, मफलर, दरियाँ, चादरें, शॉल-दुशाले सभी कुछ यहाँ मिल जाता। अहाते में ही उन्होंने एक टेलर भी बिठा रखा था।

चिम्मनलाल गोरे चिट्टे काजू-बादामवाले आदमी थे। पायजामा-कुर्ता पहनते। चमकदार क्रीम सिल्क का कुर्ता और सफेद पायजामा। पहनते तो बाबूजी भी पायजामा ही थे लेकिन उनके पायजामे सूती, चौड़ी मोहरी और नाड़ेवाले होते। जबकि चिम्मनलाल सँकरी मोहरी के, कमरपट्टे वाले टैरीकॉट के पायजामे पहनते। उनमें बटन नहीं, चेन लगी होती।

एक बार चिम्मनलाल ने अलाबख्श को दो पायजामे सिलने के लिए कपड़ा दिया – बढ़िया क्वालिटीवाला सफेद टैरीकॉट। अलाबख्श ने बाकायदा खड़े होकर, मोटे चश्मे से देखते हुए उनका नाप लिया। कपड़े पर नीली चॉक से नापजोख और बाकी की तफसील दर्ज कर ली।

बात आई-गई हो गई। दीपावली का मौका था। किराने का कुछ सामान खरीदना था सो बाबूजी मुझे मज़ीद चच्चा की दुकान पर बिठाकर चले गए थे। इतने में मैंने चिम्मनलाल को अलाबख्श की दुकान में जाते देखा। शायद अपने पायजामे लेने आए होंगे। अचानक उनके चिल्लाने की आवाज़ आई। वे किसी पर नाराज़ हो रहे थे। मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था। मैं वहीं खड़े होकर उनकी बातें सुनने की कोशिश करने लगा। अब तक आसपास के कुछ लोग भी जमा हो गए थे। मज़ीद चच्चा भी मुझे वहीं रहने का बोलकर वहाँ चले गए। इतने में बाबूजी आते दिखे। तभी चिम्मनलाल अलाबख्श की दुकान से चीखते हुए निकले, “मुझे मेरा कपड़ा वापस चाहिए।”

मज़ीद चच्चा वापस आकर मशीन पर काम करने लगे थे। बाकी लोग भी अपनी-अपनी दुकानों को लौट गए थे। थोड़ी देर बाद मज़ीद चच्चा की बातों से माजरा समझ में आया। दरअसल अलाबख्श ने पायजामों में चेन की जगह बटन लगा दिए थे। बूढ़े आदमी थे, भूल गए होंगे या फिर कारीगर की गलती से हो गया हो। क्योंकि आमतौर पर नाड़ेवाले या बटनवाले पायजामे ही सिले जाते थे। चेनवाले तो कोई-कोई ही पहनता था। चिम्मनलाल ने दोनों पायजामों को अलाबख्स पर फेंकते हुए कहा था, “इन्हें तुम्हीं रख लो।” सुनकर बहुत बुरा लगा। एक तो अलाबख्श बुज़ुर्ग व्यक्ति थे, और उनकी आँखें भी कमज़ोर थीं। ऐसे में अगर चेन की जगह बटन लग गए तो क्या गज़ब हुआ! वैसे भी कुर्ते से आधा पायजामा तो ढँका ही रहता है।

माहौल कुछ देर गमगीन बना रहा। अलाबख्श मशीन की टेबल पर कुहनियाँ टिकाए रास्ते की ओर देखते रहे। ये पायजामे जैसे उनके सिर पर पहाड़ थे। कपड़ा महँगावाला था। चीज़ तो बिगड़ी ही बिगड़ी, जलालत हुई सो अलग। बाबूजी उनकी दुकान की तरफ बढ़े तो मैं भी उनके पीछे हो लिया। बाबूजी ने अलाबख्श के हाथ से पायजामे लिए, खोलकर देखा और कहा, “मुझे दो पायजामे बनवाने ही थे। इन्हें मैं लिए लेता हूँ। आप कपड़ा खरीदकर सेठजी के लिए दूसरे सिल देना।” बाबूजी ने कुछ नोट निकालकर अलाबख्श के हाथों में रखे और पायजामों को रोल करते हुए बाहर आ गए। मज़ीद चच्चा की गुमटी में आकर उन्होंने पायजामों को झोले में रखा। झोला साइकिल की हैण्डिल में टाँगा और मुझे बैठने को कहा। बाबूजी बाईं ओर से साइकिल पर चढ़ते थे। एक हाफ पैडिल मारकर उन्होंने साइकिल आगे बढ़ाई और घण्टी बजाते हुए गली से निकल गए।

घर पर जाने कब, बाबूजी ने पायजामों का वो बण्डल झोले से निकालकर किसी पेटी में गरम कपड़ों के नीचे दबा दिया। घर में उसका कभी कोई ज़िक्र नहीं हुआ। मैंने भी किसी से कुछ नहीं कहा। पर इतना समझ में आया कि बाबूजी को पायजामों की बिलकुल ज़रूरत नहीं थी। उनके दो पायजामे कई बार दो-तीन साल चलते थे। समय गुज़र गया। मुझे नहीं मालूम उन पायजामों का क्या हुआ। पर इतना तो है कि मैंने बाबूजी को उन पायजामों को पहने हुए कभी नहीं देखा।

3 डी आइमैक्स में बनी एक अद्‌भुत फिल्म –

ग्रैविटी

विवेक सोले

"धरती से 372 मील ऊपर भयानक सन्नाटा होता है। ऑक्सीजन नहीं। हवा का दबाव भी नहीं। वहाँ जीवन असम्भव है।"

इस सन्देश के साथ शुरू होती है अल्फॉन्सो कौरोन की यह अत्यन्त कसी हुई, यथार्थवादी, रोमांचकारी, विज्ञान कथा *ग्रैविटी*।

फिल्म के पहले ही दृश्य से अन्तरिक्ष की विशालता, एकाकीपन और सन्नाटा महसूस हो जाता है। गुरुत्वाकर्षण (ग्रैविटी) के लगभग अभाव में अन्तरिक्ष में तैरते अन्तरिक्ष यात्रियों की भूमिका में हैं सैंड्रा बुलॉक (फिल्म में डॉ. रायन स्टोन) और जॉर्ज क्लूनी (फिल्म में मैट कोवॉल्स्की)। स्पेस शटल से हबल स्पेस टेलिस्कोप के रखरखाव और मरम्मत के सामान्य मिशन पर गए ये लोग पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं। अचानक हूस्टन से एक सन्देश आता है कि एक रूसी मिसाइल के एक उपग्रह से टकराने के कारण उसका मलबा सैकड़ों किलोमीटर प्रति सेकंड की गति से उनकी तरफ बढ़ रहा है।

1997 में मीर अन्तरिक्ष स्टेशन में घटी वो घटना

ग्रैविटी में घटे हादसे की तरह की एक घटना 1997 में मीर अन्तरिक्ष स्टेशन पर हुई थी। उस वक्त मैन्युअल डॉकिंग (स्पेस स्टेशन की कक्षा में पृथ्वी से सामान और लोगों का आना लगातार होता रहता है। मालवाहक स्पेसक्राफ्ट अन्तरिक्ष में आने के बाद धीरे-धीरे स्पेस स्टेशन के करीब आता है। और उससे जुड़ जाता है। आमतौर पर यह काम कम्प्यूटर आदि की मदद से होता है। लेकिन इस मामले में यह काम अन्तरिक्ष यात्री स्वयं कर रहे थे।) करते समय माल वाहक प्रोग्रेस (मानव-रहित स्पेसक्राफ्ट प्रोग्रेस कहलाता है) यान मीर से टकरा गया था। इस टक्कर से स्टेशन की हवा रिसनी शुरू हो गई थी और कर्मीदल को यान का वह हिस्सा सील करना पड़ा था। ऐसा करने की जल्दबाज़ी में उस हिस्से से जानेवाली केबल भी काटनी पड़ी थी। इससे पूरे स्टेशन की बिजली और कम्प्यूटर बन्द हो गए थे। एक इंटरव्यू में कहा गया था कि उस समय यान के अन्दर परम सन्नाटा छा गया था जो एकदम असहनीय था। बड़ी मुश्किल से सभी यात्रियों को सकुशल पृथ्वी पर लौटाया गया।

एक मिसाइल के एक उपग्रह से टकराने के कारण एक सामान्य मिशन जीवन-मृत्यु के संघर्ष में बदल जाता है।

इससे एक सामान्य मिशन जीवन-मृत्यु के संघर्ष में बदल जाता है। इससे पहले कि दोनों शटल यान में पहुँच पाते वह मलबा हबल स्पेस टेलिस्कोप और उनके बाकी कर्मीदल को तबाह कर देता है। क्लूनी और बुलॉक किसी तरह पास के इंटरनेशनल स्पेस स्टेशन (**ISS**) तक पहुँचते हैं। लेकिन वह भी क्षतिग्रस्त हो चुका है। बुलॉक की ऑक्सीजन सप्लाई लगातार कम होती जा रही है। उसके लिए साँस लेना मुश्किल होता जा रहा है। फिल्म इतनी जीवन्त लगती है कि इसे देखते हुए दर्शक के लिए भी साँस लेना मुश्किल लगने लगता है। ऐसे में क्लूनी उसे हिदायत देता है – ऑक्सीजन की चुस्कियाँ लो, उसे निगलो नहीं। पृथ्वी पर जो चीज़ें हमें बिना मोल मिल गई हैं उनकी कीमत समझ आने लगती है।

ISS में पहुँचकर बुलॉक उससे जुड़े सोयुज़ यान से पृथ्वी पर लौटने के तमाम प्रयास करती है लेकिन उसका भी ईंधन खत्म हो चुका है। यह उसका पहला अन्तरिक्ष मिशन है और उसे सीमित साधनों से इस अनन्त अन्तरिक्ष में सिर्फ अपनी बुद्धि और इच्छाशक्ति के बल पर जीवित रहना है। पास ही चीनी अन्तरिक्ष स्टेशन है। पर क्या उसे उससे कुछ मदद मिलेगी? क्या वह पृथ्वी पर लौट पाएगी? यह तो फिल्म देखकर ही जानो।

इस साधारण-सी कहानी के स्पेशल इफैक्ट्स शानदार हैं। और इसके साथ सटीक निर्देशन ने इस फिल्म को इतना सम्मोहक बना दिया है कि दर्शक भी इन चरित्रों की कहानी में जुड़ जाते हैं। ज़्यादातर दृश्यों में कैमरा भी एक भारहीन अन्तरिक्ष यात्री की तरह डोलता रहता है। क्लूनी और बुलॉक का अभिनय वास्तविक व बेहद सराहनीय है।

अन्तरिक्ष में वातावरण का अभाव है इसलिए वहाँ आवाज़ भी एक से दूसरी जगह तक नहीं पहुँच पाती। इसीलिए यान के नष्ट होने की इतनी बड़ी तबाही भी बेआवाज़ होती है। इतने बड़े हादसे के साथ जो आवाज़ लय मिलाती चलती है वो है बुलॉक की साँसों और रिरियाने की आवाज़। अन्तरिक्ष के गहरे सन्नाटे में खतरा लहराता रहता है। यह फिल्म जितना आँखों के सजग रहने की माँग करती है उतना ही कानों का चौकन्ना रहना भी इसमें बेहद ज़रूरी है। इस सन्नाटे को सुनने के लिए, फिल्म के साउंड इफैक्ट और पृष्ठभूमि में बजते संगीत की जुगलबन्दी सुनने के लिए। फिल्म में बातचीत के अलावा कोई विशेष आवाज़ें नहीं हैं। इसलिए भी फिल्म के संगीतकार स्टीवन प्राइस की ज़िम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। उनका संगीत पृष्ठभूमि में एकदम सटीक प्रभाव पैदा करता है

किसी एक उपग्रह के नष्ट होने के कारण कई उपग्रहों के नष्ट होने की श्रृंखला बन जाना अन्तरिक्ष की एक वास्तविक समस्या है।

और वह दर्शक के आसपास तैरता रहता है। खासतौर पर "डोंट लेट गो" संगीत फिल्म के बाद भी दिमाग में घूमता रहता है। यह बहुत कुछ फिल्म की तासीर से मिलता-जुलता है। इससे पहले स्टीवन प्राइस *बैटमैन* और *लॉर्ड ऑफ द रिंग्स* के लिए भी संगीत दे चुके हैं।

विज्ञान की दृष्टि से फिल्म की बारीकियों का ध्यान रखा गया है। अमरीकी स्पेस शटल, इंटरनैशनल स्पेस स्टेशन **(ISS)**, हबल स्पेस टेलिस्कोप **(HST)**, रूसी सोयुज़, जारया, चीनी स्टेशन तिआंगॉन्ग शेनझोउ ये सब असली अन्तरिक्ष यानों के नाम हैं। हबल स्पेस टेलिस्कोप की मरम्मत अन्तरिक्ष में पहले भी की जा चुकी है। मरम्मत के औज़ार भी वास्तविक हैं। वहाँ हवा नहीं होती तो आवाज़ भी नहीं होती। स्क्रू खोलने की आवाज़ भी खुद के शरीर के ज़रिए ही कान तक पहुँचती है। इसीलिए पूरा स्पेस स्टेशन बिना आवाज़ के तबाह होता दिखाया गया है।

किसी एक उपग्रह के नष्ट होने के कारण कई उपग्रहों के नष्ट होने की श्रृंखला बन जाना अन्तरिक्ष की एक वास्तविक समस्या है। इसे केसलर सिंड्रोम कहा जाता है। 1978 में नासा के वैज्ञानिक डोनाल्ड जे केसलर द्वारा यह विचार प्रस्तुत किया गया था। कुछ महीने पहले ही एक चीनी उपग्रह एक रूसी उपग्रह के मलबे से नष्ट हो गया था। चीनी अन्तरिक्ष यान शेनझोउ का डिज़ाइन भी सोयुज़ यान से सचमुच मिलता-जुलता है। बस आकार में शेनझोउ थोड़ा बड़ा है। पृष्ठभूमि आसमान में तारे स्पष्ट दिखते हैं। जिज्ञासु दर्शक उसमें कृतिका नक्षत्र ढूँढ सकते हैं।

बॉक्स 1

Manned Maneuvering Unit (MMU)

स्पेस स्टेशन के अन्दर चूँकि हवा का दबाव पृथ्वी जैसा ही होता है इसलिए वहाँ अन्तरिक्ष यात्रियों को विशेष स्पेस सूट पहनने की ज़रूरत नहीं पड़ती है। लेकिन जब भी उन्हें सेटलाइट्स की मरम्मत, रखरखाव आदि के काम से बाहर आना होता है तो वे विशेष स्पेस सूट पहने रहते हैं। वे अपने यान से दूर न चले जाएँ इसलिए वे एक लम्बी रस्सी जैसी चीज़ से खुद को यान से बाँधे रहते हैं। जबकि एम एम यू अन्तरिक्ष में घूमने की एक विकसित इकाई है। इस कुर्सीनुमा स्पेस सूट में जेट पैक और नियंत्रक होते हैं। इसमें अन्तरिक्षयात्री को खुद को यान से बाँधे रखने की ज़रूरत नहीं होती है। फिल्म में सैंड्रा स्पेस सूट पहने रहती हैं और क्लूनी एम एम यू में होते हैं।

विज्ञान कथाओं पर बनी फिल्मों में विज्ञान को अकसर ताक पर रख दिया जाता है। इस हिसाब से देखें तो *ग्रैविटी* में ऐसी गलतियाँ कुछ कम दिखती हैं। ज़्यादातर लोगों के लिए भारहीनता और शून्य गुरुत्वाकर्षण एक ही है लेकिन ऐसा है नहीं। पृथ्वी की कक्षा में एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक जेट के धक्के से नहीं जा सकते हैं। कक्षा की ऊँचाई और कक्षीय समतल **(Orbital Plane)** के बदलाव के कारण एक छोटे **MMU** (**Manned Maneuvering Unit** – देखें बॉक्स 1) के ईंधन के भरोसे हबल की कक्षा से **ISS** तक जाना असम्भव है।

कहानी में एक महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है जब क्लूनी और बुलॉक **ISS** तक पहुँचते हैं और बुलॉक का पैर सोयुज़ कैप्सूल के पैराशूट की डोरी में उलझ जाता है। क्लूनी को पकड़ने के लिए खिंचाव से डोरी की पकड़ कमज़ोर होने लगती है। लेकिन एक ही कक्षा में ऐसा नहीं होता। एक कक्षा में सभी वस्तुएँ समान गति से चलती हैं। एक और दृश्य में बुलॉक ने एक अग्निशामक यंत्र को जेट की तरह काम में लिया है। अन्तरिक्ष में ऐसा कर पाना लगभग असम्भव है। गुरुत्वाकर्षण केन्द्र से ज़रा भी हटकर अगर वह जेट चलता तो बुलॉक भँवर की तरह घूमने लगती जिस पर नियंत्रण पाना और कठिन हो जाता। लेकिन इन छोटी-मोटी गलतियों को नज़रअन्दाज़ किया जा सकता है क्योंकि *ग्रैविटी* एक बेहद उम्दा फिल्म है।

ज़्यादातर लोग मानते हैं कि भारहीनता और शून्य गुरुत्वाकर्षण एक ही है लेकिन ऐसा है नहीं।

ऐसी फिल्म को शूट करना बेहद चुनौतीपूर्ण होता है। अल्फॉन्सो कोरोन और सैंड्रा बुलॉक ने एक इंटरव्यू में बताया कि इस फिल्म के लिए पहले से मौजूद सॉफ्टवेयर काम नहीं आए थे। इसलिए उन्हें नए उपकरण बनाने पड़े। ज़्यादातर दृश्य कम्प्यूटर पर ही तैयार किए गए हैं। कलाकारों के लिए यह और भी कठिन होता है। शूटिंग के समय सैंड्रा को अकेले ही एक क्यूब में लटका दिया जाता था और उन्हें चेहरे पर सही भाव लाने पड़ते थे। ट्रॉली पर कैमरा इतनी तेज़ी-से चेहरे के पास आता मानो टकरा ही जाएगा।

सैंड्रा बुलॉक ने अन्तरिक्ष यात्री केडी कोलमैन से भी इस फिल्म में अभिनय के लिए सलाह ली थी।

जॉर्ज क्लूनी ने एक अनुभवी अन्तरिक्ष यात्री का चरित्र बखूबी निभाया है। तनावपूर्ण स्थिति में छोटी-छोटी निजी बातों से माहौल को हलका-फुलका बनाना कोई उनसे सीखे। विपरीत परिस्थिति में संयम बनाए रखना और अपने साथी का हौसला इतना बढ़ाना कि अपनी गैर-मौजूदगी में भी वह आपको अपने पास महसूस करे यही सच्चा नेतृत्व है।

कुल मिलाकर *ग्रैविटी* ने अन्तरिक्ष विज्ञान कथाओं के लिए एक नया मापदण्ड स्थापित कर दिया है। यह फिल्म हमें एक साहसिक यात्रा पर ले जाती है। परिस्थिति कितनी भी चुनौतीपूर्ण हो या असम्भव लगे लेकिन हार नहीं मानना। अन्तरिक्ष में हर काम कठिन होता है – रोना भी। **"But don't let go"** (इस फिल्म के पोस्टरों में इस लाइन को प्रमुखता से देखा जा सकता है।) चक मक

चित्र पहेली
बाएँ से दाएँ
ऊपर से नीचे
2½

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2012-14

कहानी का परिवार

प्रभात

एक कहानी थी।
कहानी के परिवार में एक चाँद, तीन तारे, बादल और ठण्डी हवा थे।
कहानी का परिवार रात के घर में रहता था।
कहानी की घड़ी में एक घण्टे का मतलब एक साल होता था।
कहानी के परिवार को रात के घर में रहते हुए बारह साल हो गए थे।
रात का घर पुराना पड़कर टूटने-फूटने लगा था।
रात के घर की छत के टूटने से वहाँ रोशनी आने लगी थी।
रोशनी से चाँद को और तीन तारों को परेशानी हुई।
बादल और ठण्डी हवा ने कहा, "एक साल और इसी घर में रह सकते हैं!"
कहानी ने कहा, "नहीं!"
कहीं और नया घर देखेंगे।
कहानी एक चाँद, तीन तारों, बादल और ठण्डी हवा के साथ चली गई।
कहीं दूर, नए घर की तलाश में।

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल